॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

वेदान्त-दशश्लोकी

"तत्त्वालोक - हिन्दी भावार्थ सहिता"

अनुवादकः

श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय-निम्बार्कभूषणः
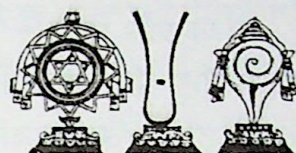
॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य प्रणीता-

''वेदान्त-दशश्लोकी''

श्रीनन्ददासविरचितया ''तत्त्वसार-प्रकाशिनी'' व्याख्ययालङ्कृता

सा च

''तत्त्वालोक'' - हिन्दी भावार्थ सहिता सम्पादिता''

अनुवादकः सम्पादकश्च

निम्बार्कभूषणः श्रीवासुदेवशरणउपाध्यायः

व्या० सा० वेदान्ताचार्यः

प्राचार्यः-

श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालयस्य

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठम्, निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबादः

अजयमेरुः (राजस्थानम्)

वि० सं० २०६६ श्रीनिम्बार्काब्द ५१०५-६

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य ''श्रीजी'' महाराज

की

शुभाशीर्वादात्मक - भावाभिव्यक्ति

''श्रीवेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी'' में सुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य जगद्गुरुवरेण्य श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यश्री ने सम्पूर्ण वेदान्तदर्शन के समग्र सिद्धान्तों के दिव्य सार एवं श्रुति-स्मृति-सूत्रों के तत्त्वसार को दश ही श्लोकों में सन्निविष्ट कर दिया है जो इत्थंभूत वेदान्त-सिद्धान्त का प्रतिपादन अन्यत्र दुर्लभ है।

इसी ''वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी'' की संस्कृत व्याख्या स्वरूप ''श्रीवेदान्तरत्नमञ्जूषा'' जिसका प्रणयन आपश्री से परवर्ती परमाचार्यवर्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज ने की है, और ये आचार्यवर्य श्रीभगवन्निम्बार्का-चार्य की आचार्य-परम्परा में चतुर्थ पुस्त में सुशोभित थे। उक्त ''दशश्लोकी'' की यह व्याख्या इतनी अनुपम प्राञ्जल सुरभारती में निबद्ध है, आपकी ही परवर्ती आचार्य परम्परा में अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठा-धीश्वर श्रीमहावाणीकार रसिकराजराजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज ने भी ''दशश्लोकी'' पर ''श्रीसिद्धान्त रत्नाञ्जलि'' नामक संस्कृत व्याख्या की कमनीय रचना कर वेदान्त दर्शन की श्रीवृद्धि में अद्भुत कार्य सम्पादित किया है। अथ च इसी प्रकार महामनीषी श्रीगिरिधरप्रपन्न-विरचित ''श्रीलघुमञ्जूषा'' व्याख्या भी देववाणी में अति प्रसिद्ध है।

सम्प्रति-पूर्ववर्ती विद्वद्वरेण्य श्रीनन्ददासजी द्वारा प्रस्तुत ''वेदान्त-दशश्लोकी'' की संस्कृत व्याख्या- ''तत्त्वसार-प्रकाशिनी'' प्राप्त हुई है और इसकी हस्तलिखित प्रति परम सम्मानास्पद डा० श्रीवृन्दावनविहारीदासजी

''काठिया बाबा'' व्याकरणाचार्य एम. ए. सुखचर-कोलकाता (बंगाल) ने यहाँ अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ आने पर अवलोकन कराई जिसे अपने श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य विद्वद्वर निम्बार्कभूषण पं० श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय व्या० सा० वेदान्ताचार्य ने ''तत्त्वालोक'' हिन्दी भावार्थ करके इसके प्रकाशन की योजना बनाई जिसकी आर्थिक सेवार्थ भक्तप्रवर श्रीश्यामसुन्दरजी वेरीवालों ने सहर्ष अपनी भावना प्रस्तुत की जिसके फलस्वरूप तत्काल मुद्रण प्रकाशन कार्य को सम्पन्न कर यह ग्रन्थ विद्वज्जन महानुभाव एवं भगवद्भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है जिसके मनन अनुशीलन से सभी परम लाभान्वित होगें।

मिति-आश्विन शुक्ल १०
विजयादशमी महोत्सव
सोमवार वि० सं० २०६६
दिनांक २८/९/२००९

-श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

प्रेरणात्मिका - सम्मति

परममनीषी श्रीमन्नन्ददासजी महाराज द्वारा विरचित दशश्लोकी की व्याख्या ''तत्वसार-प्रकाशिनी'' के हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन की पृष्ठभूमि में श्रीमहन्त डा० श्रीवृन्दावनविहारीदासजी महाराज काठिया बाबा, श्रीकाठिया बाबा आश्रम, सुखचर कोलकाता का पूर्वपरामर्शानुसार दि० २३/६/२००४ को लिखा प्रेरणादयी पत्र प्रमुख कारण है। पत्र के साथ उक्त संस्कृत व्याख्या की एक प्रति संलग्न की गयी थी जिससे अनुवाद करने में सुगमता हुई। श्रीमहन्तजी ने जो प्रेरणाप्रद पत्र मेरे (वासुदेवशरण के) नाम प्रेषित किया था उसका स्वरूप निम्न प्रकार है--

(पत्र का प्रारूप)

श्रीवृन्दावनविहारीदास, काठिया बाबा
महन्त काठिया बाबा आश्रम
सुखचर, जि० २४ परगना (कोलकाता)
पश्चिम बङ्गाल
फो० २५६३२०१७
दि० २३/६/२००४ ई०

परम श्रद्धाभाजनेषु प्रधानाचार्येषु सादरं प्रणतिपूर्वकं निवेदनं वर्तते यद् दशश्लोकी-टीका ''तत्त्वसार-प्रकाशिनी'' नाम्नी श्रीनन्ददासेन विरचिताऽस्ति, मया केनाऽपि प्रकारेण पुण्यपत्तनादुद्धारं कृत्वा स्पष्टी कृता। अस्याः टीकायाः हिन्दी भाषायां भाषान्तरं अर्थात् अनुवादं कृत्वा प्रकाशनस्य कृते परिश्रमो विधेयः। अनुवादानन्तरं उत्सवेऽस्मिन् प्रकाशनं विधाय सर्वेभ्यो वितरणं कर्तव्यम्।

मन्ये भवतां स्वास्थ्यं समीचीनं वर्तते। गुरु चरण-श्रीदयाशंकरस्य पादपद्मेऽपि प्रणामाञ्जलयो निवेदनीयाः। किमधिकं विरम्यते । इत्यलम्-

सेवायाम्- भावत्कः-
पं० श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय वृन्दावनविहारिदासः
प्राचार्यः-श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविधालय (सलेमाबादः)

मैं पूज्य श्रीमहन्त वृन्दावनविहारीदासजी महाराज काठिया बाबा

को भूयोभूयः नमन करते हुए उक्त पत्र को ''प्रेरणात्मिका-सम्मति'' के रूप में ग्रन्थारम्भ में संलग्न कर रहा हूँ। यद्यपि यहाँ से व्याख्याकार श्रीनन्ददासजी का परिचय यदि उपलब्ध हो तो परिचय सहित अपनी शुभ सम्मति प्रेषित करने के लिए निवेदन पत्र महन्तजी महाराज के पास प्रेषित किया था, लम्बे समय तक प्रतीक्षा करने पर भी प्रत्युत्तर प्राप्त न होने से लगा उनको पत्र नहीं मिला। दूरभाष से सम्पर्क करने का प्रयास किया उसमें भी सफलता नहीं मिली। अतः उक्त प्रेरणाप्रद पत्र को ही अविकलरूप में प्रस्तुत किया गया। श्रीनन्ददासजी का जन्मादि विवरण प्राप्त न होने से परिचय नहीं लिखा जा सका। इतना संकेत अवश्य मिला कि वे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के पश्चात् हुए हैं, क्योंकि अपनी व्याख्या में सिद्धान्त रत्नाञ्जलि का उल्लेख किया है। यदि उनका तथ्यात्मक परिचय भविष्य में कहीं उपलब्ध हो जायेगा तो अग्रिम संस्करण में उल्लेख किया जावेगा। इत्यलम्--

--सम्पादकोऽनुवादकश्च

''तत्त्वसार प्रकाशिनी'' पर-

''गागर में सागर'' भर देने की लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाली आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क विरचित ''वेदान्तदशश्लोकी'' सचमुच वैसी ही है। सम्पूर्ण दर्शन का सार सर्वस्व ''दशश्लोकी'' में अन्तर्निहित है। दशश्लोकी के विशदज्ञान हेतु परवर्ती आचार्यों ने अनेक व्याख्या ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें ''वेदान्त रत्नमञ्जूषा, वेदान्त रत्नाञ्जलि, नवनीतसुधा'' आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। इसीक्रम में नन्ददासजी द्वारा लिखित वेदान्तदशश्लोकी की तत्त्वसार प्रकाशिनी टीका आती है जो प्रकाशोन्मुख है। एक ही वस्तु पर अनेक व्याख्याएं होने पर भी तत् तत् बुद्धिवैशद्य की झलक, जगह-जगह पर देखने को मिलती है। तत्वसार प्रकाशिनी टीका में वह झलक है। जीवात्मा तथा शरीर की व्याख्या में स्वल्पाक्षरों में भेद बताया गया है। वह पाठक वर्ग को सहज ही समझ में आजाएगा।

साथ ही हिन्दी व्याख्याकार जो संस्कृत वाङ्मय के उद्भट विद्वान् संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान से सगौरव सम्मानित, अनेक संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी व्याख्याकार, सभ्यता और शालीनता के उदाहरणीय व्यक्तित्व, सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय हैं। जिनकी प्राञ्जलशैली, सरल और सरस होती हुई भी दार्शनिक उलझन का विचित्र मीठास से समाधान करते हैं उससे तत्त्व प्रकाशिनी टीका को सुवर्ण सुगन्धि प्राप्त हुई है। मुझे विश्वास है कि साम्प्रदायिक जिज्ञासुओं को महान् लाभ होगा।

सम्वत् २०६६
भाद्रशुक्ल द्वादशी (वामन द्वादशी)

आचार्य हरिशरणदेव
(प्रा० हरिशरण उपाध्याय)
श्रीनिम्बार्कदर्शन केन्द्र-राधाकृष्ण मन्दिर
गैंडाकोट - नेपाल

भूमिका

वेदान्तदर्शन की अनेकशाखाओं में सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित स्वाभाविक द्वैताद्वैत दर्शन किंवा स्वाभाविक भेदाभेद दर्शन शास्त्रों में स्वतः स्फुर्त समन्वयात्मक सिद्धान्त को अभिव्यक्त करता है। आचार्यपाद ने उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता (प्रस्थानत्रयी) पर वृत्यात्मक संक्षिप्त भाष्यों की रचना की है, परन्तु वर्तमान में ''वेदान्त पारिजात सौरभ'' (ब्रह्मसूत्र भाष्य) ही उपलब्ध है। गीतावाक्यार्थ और उपनिषद् प्रकाशिका का परवर्ति आचार्यप्रवरों के भाष्य ग्रन्थों में टिप्पणी स्वरूप संकेत मात्र मिलता है। श्रीनिम्बार्क भगवान् की मौलिक रचना वेदान्तदशश्लोकी (वेदान्तकामधेनुरूपा) लोक में परम प्रसिद्ध एवं वैष्णवजनों का कण्ठहार है। इसके अतिरिक्त आचार्यपाद की अन्य रचना प्रपन्नकल्पवल्ली (मुकुन्दमन्त्र की पद्यात्मकव्याख्या) मन्त्ररहस्यषोडशी (गोपालमन्त्रकी पद्यात्मक व्याख्या) प्रातः स्मरण स्तोत्र, राधाष्टक आदि विख्यात हैं। दशश्लोकी पर श्रीनिम्बार्क से चतुर्थपीठिका में विराजित श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज द्वारा रचित विवरणात्मक व्याख्या ''वेदान्तरत्नमञ्जूषा'' नाम से प्रसिद्ध है। इसीकी लघुरूपा ''लघुमञ्जूषा'' व्याख्या जो आचार्य श्रीगिरिधरप्रपन्नजी द्वारा विरचित है। यह व्याख्या निम्बार्क दर्शन में प्रवेश के लिए उसी प्रकार उपयुक्त सोपान है जिस प्रकार पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में प्रवेश के लिए श्रीवरदराजाचार्य प्रणीत लघुसिद्धान्त कौमुदी है। तदनन्तर रसिकराजराजेश्वर महावाणीकार जगद्गुरु श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज ने सिद्धान्त रत्नाञ्जलि नाम से दशश्लोकी की व्याख्या की है जिसमें भक्तियोग और भक्तिरस पर विशद विवेचन उपलब्ध है।

श्रीनिम्बार्क भगवान् के ५१०० जयन्ती महोत्सव के अवसर पर विविध शास्त्र मर्मज्ञ श्रीमहन्त डा० श्रीवृन्दावनविहारीदासजी महाराज काठिया, काठिया बाबा आश्रम सुखचर कोलकाता द्वारा विद्वद्वरेण्य श्रीनन्ददासजी महाराज की कृति ''तत्त्वसार प्रकाशिनी'' नामक संक्षिप्त संस्कृत व्याख्या प्राप्त हुई थी। हिन्दी अनुवाद सहित इसका प्रकाशन कराकर वैष्णवजनों को वितरण किया जाय तो श्रेष्ठ होगा ऐसी भावना के साथ

महन्तजी ने इसका दायित्व इस अकिञ्चन को सौंपा था किन्तु परिस्थितिवश शीघ्र प्रस्तुत नहीं कर सका एतदर्थ क्षमा प्रार्थी हूँ। भगवत्कृपा, पूज्य आचार्यश्री एवं सन्तों के आशीर्वाद से दशश्लोकी की उक्त संक्षिप्त संस्कृत व्याख्या का विवेचनात्मक हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन किया जा रहा है। लगभग आज से ६ मास पूर्व ही निम्बार्क मुद्रणालय में मुद्रित होकर ग्रन्थाकार रूप में अवस्थित था। संकोचवश पूज्य आचार्यश्री से प्रकाशन हेतु निवेदन नहीं कर पा रहा था इसी अवसर पर भक्तवर श्रीश्यामसुन्दरजी वेरीवाल कोलकाता जब आचार्यपीठ पधारे हुए थे तब प्रसङ्गवश मैंने ग्रन्थ की मुद्रित प्रति उन्हें दिखाई, देखते ही उन्होंने प्रकाशन हेतु अर्थराशि भिजवाने का वचन दिया था, अभी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर श्रीश्यामजी के आत्मज श्री ललितजी प्रभृति सभी आचार्यपीठ आये थे। श्रीललितजी ने ग्रन्थ प्रकाशनार्थ अर्थराशि एवं प्रकाशकीय उद्‌बोधन प्रदान करते हुए भावना व्यक्त की कि ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो जाय तो उत्तम रहेगा। पूर्व में गोलोकवासी पं० श्रीरामगोपालजी शास्त्री द्वारा लिखित सरल तथा संक्षिप्त संस्कृत व्याख्या हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित है।

आचार्यपीठ के पूर्व अधिकारी पं० श्रीलाडिलीशरणजी महाराज द्वारा प्रणीत ''अर्थपञ्चक निर्णय'' नामक हिन्दी में प्रश्नोत्तर रूप व्याख्या भी अनुपम है। वर्तमान पीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज द्वारा रचित ''नवनीत-सुधा'' नामक व्याख्या सानुवाद प्रकाशित है जो राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर की कनिष्ठ उपाध्याय परीक्षा के निम्बार्क दर्शन पाठ्यक्रम में स्वीकृत है। इसी प्रकार नेपाल के वरिष्ठ विद्वान् आचार्य श्रीखेमराजकेशव-शरणजी द्वारा वेदान्तरत्नमञ्जूषा के आधार पर नेपाली भाषा में व्याख्यायित-दशश्लोकी का प्रकाशन भी अपने आप में गौरवपूर्ण है। इस प्रकार अन्यान्य विद्वानों ने भी विभिन्न भाषाओं में व्याख्या करके इसके वेदान्तकामधेनु नाम को सार्थक किया है।

दशश्लोकी की यह व्याख्या सूत्रात्मक अति संक्षिप्त होते हुए भी भाव गम्भीरता के कारण विशद है। व्याख्याकार के आशय को खोलने में कहीं कहीं हिन्दी अनुवाद का कलेवर विस्तृत हो गया है। जैसे--

''ननु ब्रह्मणः प्रतिविम्ब एव जीवः, तथा च सूत्रम्-उपमा

सूर्यकादिवत्, इतिचेन्न, उपाध्यनन्तर्गतस्यैववृक्षादेः प्रतिबिम्ब दर्शनात्, ब्रह्मणोऽविद्यादि-बहिः स्थत्वे सदेशत्वापत्तेः'' इन दो पंक्तियों के वाक्यों का भाव दर्शन के लिए अति संकोच करते-करते भी १५ पंक्तियों का विस्तार हो ही गया है। इसी प्रकार भक्ति के भेद एवं भक्तिरस के विवेचन में भी अपेक्षाकृत विस्तार हो गया है। ''प्रधानक्षेत्रपतिर्गुणेशः'' इस श्रुति वाक्य की विवेचना में एक पृष्ठ से भी अधिक का विस्तार हुआ है। फिर भी ग्रन्थ का कलेवर अनावश्यक बड़ा न हो जाय एतदर्थ विशेष ध्यान रखा गया है। अन्त में राधाष्टक स्तोत्र भी हिन्दी भावार्थ सहित संलग्न कर दिया गया है। अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज के शुभाशीर्वादात्मक माङ्गलिक शुभ सन्देशमय वचनों से ग्रन्थ की गरिमा बढ गयी है। समस्त वैष्णवजन ग्रन्थ का अनुशीलनपूर्वक स्वाध्याय कर व्याख्याकार, अनुवादक, प्रकाशक के श्रम को सफल बनायेंगे। इसके प्रकाशन में श्रीऋषिकुमार शर्मा का श्रम एवं प्रेस कापी तैयार करने में चि० श्रीमुकुन्दशरण उपाध्याय का सहयोग प्रशंसनीय रहा है। अतः दोनों साधुवादार्ह हैं। इत्यलम्।

विद्वद्विधेय--

वासुदेवशरण उपाध्याय

प्रकाशकीय--

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबाद द्वारा श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्त उपासना सदाचार परक प्राचीन-अर्वाचीन गद्य-पद्यात्मक अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है यह अत्यन्त गौरव का विषय है। साहित्य के विना सम्प्रदाय परम्परा का ऐतिहासिक ज्ञान, पूजनोपासना पद्धति, दार्शनिक सिद्धान्त, आचार व्यवहार, नित्यनैमित्तिक दिनचर्या का परिज्ञान नहीं होता। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के पीठाचार्यों, मनीषी विद्वानों, सन्त कवियों, साधकों ने अपने-अपने स्तर से सामाजिक जीवन और व्यावहारिक जीवन के उपयोगी बिन्दुओं को ध्यान में रखकर साहित्य रचनाएं की हैं। उन साहित्यों में कठिन से कठिन तथा सरल से सरलतम विषयों का समावेश किया है। जिज्ञासुजन अपने बौद्धिक क्षमता के अनुसार श्रवण, पठन करके उनका अनुशीलन करते हैं तदनुसार अपनी जिज्ञासा शान्त करते हैं।

विद्वानों का कार्य है समय के अनुकूल अपनी मौलिक रचना द्वारा जनता का मार्ग दर्शन करें अथवा अपने से पूर्ववर्ती मनीषियों की रचनाओं को सरल सुबोध भाषा में अनूदित कर सर्वजन संवेद्य बनावें। साथ ही समाज के अन्य महानुभावों का कार्य है अपनी आर्थिक सहायता से ऐसे साहित्य का प्रकाशन कराकर जन सेवा करें। इस प्रकार परस्पर श्रेयः की कामना से कार्य करें तो अवश्य ही जन कल्याण की भावना का अभिवर्द्धन हो जायेगा।

अभी गत अप्रेल मास (२००९) में भगवान् श्रीराधामाधव-सर्वेश्वर प्रभु के दर्शन एवं पूज्य आचार्यश्री के चरणार्चन हेतु आचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) पहुँचना हुआ था, उस समय विद्वद्वरेण्य पं० श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, प्राचार्य-श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय से मिलना हुआ। आप पिछले ४० वर्षों से पीठ की सेवा में तत्पर हैं। आपने अवगत कराया कि सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य द्वारा प्रणीत वेदान्त दशश्लोकी की एक संक्षिप्त ''तत्त्वसारप्रकाशिनी'' नाम की संस्कृत व्याख्या प्राप्त हुई थी,

उसका विवेचनात्मक हिन्दी अनुवाद सहित आचार्यपीठ से प्रकाशित होकर निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी जनों के हाथों में पहुँच जावे तो उत्तम रहेगा - ऐसी भावना से श्रीमहन्त डा० श्रीवृन्दावनविहारीदासजी काठिया, काठियाबाबा आश्रम, सुखचर कोलकाता द्वारा मुझे (वासुदेव-शरणजी को) प्रदान की गयी। अन्य कार्य तो हो गया है अब अर्थ साध्य कार्य अवशिष्ट है। हमने उसके प्रकाशन में लागत की जानकारी ली, हमने सहर्ष उक्त राशि भिजवाने की स्वीकृति प्रदान की थी। अभी हाल में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर हमारे परिवार के सदस्यगण आचार्यपीठ गये थे। चि० ललित ने उक्त राशि पण्डित श्रीवासुदेवशरणजी को प्रदान की है, यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि उक्त ग्रन्थ अब यथाशीघ्र वैष्णवजनों को उपलब्ध होगा। पूज्य आचार्यश्री की असीम अनुकम्पा से अनेक ग्रन्थों का आचार्यपीठ एवं श्री श्रीजी कुञ्ज वृन्दावन से प्रकाशन हुआ है भविष्य में भी होता रहेगा ऐसा दृढ विश्वास करते हैं।

विनीत-
श्यामसुन्दर वेरीवाल
कोलकाता

॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥

दशश्लोकी

संस्कृत व्याख्या "तत्त्वसार-प्रकाशिनी"

व्याख्याकारः - श्रीनन्ददासः

मंगलाचरणम्-

श्रीमन्मदनगोपालपादपङ्केरुहद्वयम् ॥
प्रणम्य क्रियते व्याख्या 'तत्त्वसार-प्रकाशिनी।।'

तत्त्वालोकः

श्रीराधामाधवौ नत्वा तथा श्रीनिम्बभास्करम्।
तत्त्वसारस्यभाषायां तत्त्वालोकं करोम्यहम्॥

हिन्दी भावार्थ - व्याख्याकार श्रीनन्ददासजी महाराज शिष्टजन परम्परा का अनुसरण करते हुए अपने इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण के नमन रूप मंगलाचरण करते हैं। ग्रन्थारम्भ में-

मैं भगवान् मदनगोपाल सर्वेश्वर प्रभु श्रीकृष्ण के पादपद्मद्वय का नमन करके वेदान्त दशश्लोकी की "तत्त्वसार-प्रकाशिनी" नामक व्याख्या की रचना करता हूँ।

व्याख्या - इह खलु सकललोकहितावतारः सुदर्शनः श्रीनिम्बार्को भगवान्मन्दमतीन् जनान् वीक्ष्य तेषामात्मानात्मपरमात्म-संबोधाय दशश्लोकीमपि चकार। साधनत्वेन साध्यत्वेन च श्रीगोपाल-चरणकमलमनुगच्छतां सतां पदार्थत्रयमेवोपपादेयं, पदार्थत्रयं चात्मानात्मा परमात्मा चेति। तत्र प्राप्ततया जीवात्मनो हेयत्वेनानात्मनः प्राप्यत्वेन च परमात्मनो निरूपणम्। तत्रादौ श्लोकद्वयेन जीवस्वरूपं जीवानां परस्परं भेदश्च निरूप्यते ज्ञानेत्यादिना।

भावार्थ-इस संसार में सकललोक के हित अर्थात् कल्याण के लिए अवतार धारण किये हुए श्रीहरि के प्रिय आयुध चक्रराज श्रीसुदर्शन आद्याचार्यरूप में भगवान् श्रीनिम्बार्क ने कलिकाल कलुषित मन्दबुद्धि वाले

लोगों को देखकर उन सबके चित् अचित्, ईश्वर (आत्मा, अनात्मा, परमात्मा) के स्वरूप लक्षण सम्बन्धादि के परिज्ञान के लिए वेदान्त कामधेनु रूप दशश्लोकी की रचना की। भगवान् श्रीगोपाल के चरणकमलों का शरण (आश्रय) ग्रहण करने वाले सत्पुरुषों को साधन साध्य के रूप में पदार्थत्रय का ही आश्रय लेना चाहिए ।

वे तीन पदार्थ हैं आत्मा=जीव, अनात्मा=प्रकृति, परमात्मा=ईश्वर अर्थात् चेतन, अचेतन, नियन्ता, (जीव-जगत् ब्रह्म) इत्यादि शब्दों से शास्त्रों में निरूपित तत्त्व। उनमें से प्राप्यत्व अर्थात् साध्यत्व होने के कारण परमात्मतत्त्व का निरूपण बाद में करेंगे। हेयत्व होने से जगत् (जड) तत्त्व का निरूपण भी पहले करना उचित न समझ कर आचार्यप्रवर क्रम प्राप्त रूप में सर्वप्रथम जीवात्मा का आदिम दो पद्यों से स्वरूप लक्षण भेदपूर्वक निरूपण कर रहे हैं ज्ञान स्वरूपं च इत्यादि ।

मूल–ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः ।।१।।

भावार्थ - इस पद्य में जीव के सात विशेषण पद निर्दिष्ट हैं। कर्तृ पद का ''आहुः'' इस क्रिया पद से आक्षेप (अध्याहार) किया जाता है। शास्त्रकारों ने आक्षेप की परिभाषा की है--''येन विनायदनुपपन्नं तत्तेनाक्षिप्यते'' अर्थात् जहाँ कर्तृपद के बिना क्रिया पद अनुपपन्न (अनुपयुक्त) हो वहां क्रियापद से कर्तृपद का आक्षेप किया जाता है। जहाँ क्रियापद के बिना कर्तृपद अनुपपन्न (अनुपयुक्त) हो वहां वह कर्तृपद क्रियापद का आक्षेप करता है। प्रकृत श्लोक में आहुः इस क्रियापद से स्वानुरूप श्रुतयः, मुनयः इत्यादि कर्तृपदों का अध्याहार कर अन्वय संगत किया गया है।

ज्ञानस्वरूपमित्यनेन जीवस्यजडत्वव्यावृत्तिः क्रियते, तथा च श्रुतिः ''योयं विज्ञानघनः अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिरित्यादि। चकाराज्ज्ञानाश्रयत्वं तथा च ज्ञानाश्रयत्वे सति ज्ञानस्वरूपत्वमात्मत्व-मिति लक्षणं फलितम्। हरेरधीनं ईश्वरकृपाजन्यज्ञानक्रियाशक्तिकं तमेवभांतमनुभातिसर्वमिति श्रुतेः, यः आत्मनि तिष्ठन् आत्मानमंतरो यमयतीत्यादि श्रुतेश्च। शरीरसंयोगवियोगयोग्यं निजकृतकर्मवशतया शरीराणि प्राप्नोतीत्येवंविधं देवमनुष्यतिर्यक्स्थावराख्यानि शरीराणि।

शरीरं च त्रिगुणात्मकं प्रकृतिपरिणामरूपं भूतसंघातः। लिंगशरीरं तु सप्तदशावयवम्। अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपंचकं, बुद्धिमनसी कर्मेन्द्रियपंचकं, वायुपंचकं चेति। अणुं अणुपरिमाणं ''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः इत्यादि श्रुतेः। ज्ञातृत्ववन्तं ज्ञातृत्वादि गुणवन्तं अनन्तम् असंख्यं जीवमाहुः विदुः, जात्यभिप्रायेण एकवचनं यदित्य-व्ययम्। हेतौ इदं च स्वाभाविक-स्वरूपं निरूपितम् ।

भावार्थ - जीव के ''ज्ञानस्वरूप'' इस विशेषण से जडत्व की व्यावृत्ति की गयी है। इसमें श्रुति प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। ''योऽयं विज्ञानघनः, अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः'' इत्यादि, यह जो विज्ञानघन जीवात्मा है वह स्वयं प्रकाश ज्योतिर्मय स्वरूप है। यहां पर ''च'' इस अव्यय पद से ज्ञानाश्रयत्व को ग्रहण किया है। अतः जीव का लक्षण हुआ ''ज्ञानाश्रयत्वे सति ज्ञानस्वरूपत्वमात्मत्वम्'' इति। दूसरा विशेषण दिया ''हरेरधीनम्'' अर्थात् ईश्वर कृपाजन्य ज्ञान क्रिया शक्तिवाला, श्रुति कहती है ''तमेव मान्तमनुभाति सर्वम्'' ''यः आत्मनि तिष्ठन् आत्मानमन्तरो यमयति'' अर्थात् अपने दिव्यानन्त प्रकाश से जाज्वल्यमान उस परमात्मा के तेज से ही यह समस्त जीव समुदाय प्रकाशित हो रहा है। जो परमात्मा अन्तर्यामीरूप से जीव के अन्तः में प्रतिष्ठ होकर उसका नियमन करता है, अतः अन्तरात्मा भी है।

''शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्'' यह तीसरा विशेषण है । जन्मजन्मा-न्तरीय किये गये अपने कर्मों के वशीभूत होकर वह जीवात्मा नानाविध देव, मनुष्य, तिर्यक्, कीट, पतङ्ग एवं स्थावर रूप शरीरों को प्राप्त करता है, जन्म लेता है यही शरीर संयोग है। कर्मभोग पूरा होने पर स्थूल शरीर त्याग कर सूक्ष्म कारण शरीर के साथ विविध शुभाऽशुभ कर्म फल भोगने के लिए लोक लोकान्तरों को प्राप्त होना या भगवत्कृपा से मोक्ष प्राप्त होना यह शरीर वियोग है। इस प्रकार शरीर के संयोग-वियोग का योग्य जीव है। शरीर-सत्व रज स्तमः इन गुणों का कार्यरूप होने से प्राकृत तथा पृथिव्यादि पञ्च महाभूतों का संघात रूप होने से स्थूल व परिणाम स्वरूप विकारी है।

पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, मन, पञ्च तन्मात्रा अथवा पञ्चप्राण, बुद्धि इस प्रकार सत्रह अवयवों का बना हुआ सूक्ष्म शरीर जिसे लिंग शरीर

या कारण शरीर भी कहते हैं। इसी कारण शरीर के द्वारा परलोक में पुण्य पाप रूप फल भोगता है। भगवत्कृपा से लिङ्ग शरीर भी त्याग कर भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष को प्राप्त होता है, यह जीव का क्रम है।

''अणुम्'' यह चौथा विशेषण है। जीवात्मा स्वरूप से तो अणु परिमाण वाला है किन्तु धर्मभूतज्ञान से सर्व शरीर में व्याप्त रहता है अतः व्यापक है। इसमें श्रुतिप्रमाण दर्शाते हैं ''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः'' यह आत्मा अणुस्वरूप है, अतीन्द्रिय होने से इन्द्रिय गम्य नहीं है परन्तु निर्मल मन द्वारा साक्षात्कार करने योग्य है। अतः जीव का अणुत्व होना प्रमाण सिद्ध है।

''प्रतिदेहभिन्नम्'' यह पांचवां विशेषण है। चैत्र, मैत्रादि के शरीरों में भिन्न-भिन्न गुणस्वभाव से विद्यमान रहने के कारण जीव का अनेकत्व स्वतः सिद्ध है । जीव का एकत्व मानने पर भोग सांकर्यदोष आजावेगा।

''ज्ञातृत्ववन्तम्'' यह छठा विशेषण है। ज्ञातृत्वादि गुणवान्, आदि पद से भोक्तृत्व, कर्तृत्व का भी संग्रह किया गया है। ज्ञाता, भोक्ता, कर्ता इत्यादि रूप में जीवात्मा अभिहित है। केवल ज्ञानस्वरूप मानने वाले मायावादियों का व्यावर्तन ''ज्ञातृत्ववन्तम्'' इस पद से किया और केवल ज्ञानाधिकरण आत्मा कहने वाले न्यायवैशैषिकों का व्यावर्तन ज्ञानस्वरूप पदसे किया गया है। अतः ज्ञान स्वरूपत्व, ज्ञानाश्रयत्व, सर्वावस्थाओं में भगवदधीनत्व, शरीर संयोग वियोग योग्य होता हुआ अणुस्वरूप, प्रतिदेहभिन्न असंख्येय जीव है ऐसा फलितार्थ हुआ।

''अनन्तम्'' यह सातवां विशेषण है। यद् यस्मात्कारणात् ''अविनाशी वाऽरे अयमात्मा, अनुच्छित्तिधर्मा'' इत्यादिश्रुति प्रमाणों से अन्तरहित, नित्य अथवा असंख्यरूपजीवात्मा का स्वरूप लक्षण श्रुतिवचन किंवा मन्त्र द्रष्टा महर्षिगण कहते हैं। यहां एक वचन का निर्देश जात्यभिप्राय से किया है व्यक्त्यभिप्राय से नहीं। क्योंकि ग्रन्थान्तरों में ''ज्ञानस्वरूपाः ज्ञातारः'' इत्यादि व्यक्त्यभिप्राय से बहुवचनान्त प्रयोग मिलता है। ''यद्'' यह अव्यय पद हेतु के अर्थ में प्रयुक्त है। अतएव यह सब विवरण जीवगत स्वाभाविक स्वरूपगुण के कारण निर्दिष्ट है।

ननु ब्रह्मणः प्रतिबिम्ब एव जीवः तथा च सूत्रम्-

उपमासूर्यकादिवदिति चेन्न उपाध्यनंतर्गतस्यैव वृक्षादेः प्रतिबिम्ब-दर्शनात् ब्रह्मणोऽविद्यादिबहिःस्थत्वे सदेशत्वापत्तेः । ननु तर्ह्यस्तु अविद्या अवच्छिन्नो ईश्वरः। अंतकरणाद्यवच्छिन्नो जीव इति चेन्न। उपाधिनैकदेशावरणे सदेशत्वापत्तेः, कृत्स्नस्यावरणे श्रुतिविरुद्धनिरीश्वरवादापत्तेः जगदांध्यापत्तेः, जीवानां भोगसांकार्यापत्तेश्चेत्यलं विस्तरेण।

भावार्थ - अब यहां आशंका की जाती है कि ''उपमा सूर्यकादिवत्'' इस ब्रह्मसूत्र के दृष्टान्त निर्देश से ''जीवोब्रह्मैवनापरः'' जीव ब्रह्म ही है उसका पृथक् स्वरूप नहीं है, इस प्रकार अद्वैत सिद्धान्त के पोषक मायावादियों का यह कथन युक्ति एवं शास्त्रसम्मत है। क्योंकि जैसे अनेक जलपूरित घड़ों में सूर्यचन्द्रादि के प्रतिबिम्ब पड़ने पर अनेक सूर्य-चन्द्र दीखते हैं किन्तु सूर्य-चन्द्र तो एक-एक रूप में अविकृत रहते हैं उसी प्रकार असंख्य बुद्ध्यादि उपाधियों में प्रतिबिम्बित ब्रह्म ही जीव भाव को प्राप्त होकर असंख्य दीखता है। उपाधि के अपगम से केवल ब्रह्म रूप ही अवशिष्ट रहता है। जीव की अलग स्थिति-प्रवृत्ति नहीं है। इस आशंका का निराकरण करते हुए सिद्धान्तवादी बतलाते हैं-उक्त प्रतिबिम्बवाद शास्त्र संगत नहीं हो सकता। क्योंकि उपाधि के अन्तर्गत न रहने वाले वृक्ष-पर्वतादि वस्तुओं का ही प्रतिबिम्ब देखा जाता है। निर्गुण-निर्विकार, नीरूप-निरवयव ब्रह्म का तादृश उपाधिरूप अविद्यादि बाह्य वस्तु में अवस्थित होना मानने से देशादि परिच्छिन्नता आजावेगी। अतः प्रतिबिम्ब भाव ठीक नहीं।

अब अवच्छेदवाद को दिखाकर उसका निराकरण करते हैं। ब्रह्म का भले ही उपाधियों में प्रतिबिम्बित होना स्वीकार न करो किन्तु अविद्या से अवच्छिन्न ब्रह्म मठावच्छिन्न आकाश की तरह ईश्वरभाव को तथा अन्तः करणावच्छिन्न ब्रह्म घटावच्छिन्न आकाश की तरह जीव भाव को तो प्राप्त हो सकेगा । इसे स्वीकार करने में क्या आपत्ति है? यह अवच्छेदवाद भी शास्त्र सम्मत और युक्ति संगत नहीं है। क्योंकि अविद्यादि उपाधि से एकदेशावरण होने से देश कालावच्छिन्न हो जायेगा, सर्वदेशावरणत्व स्वीकार करने में श्रुति विरुद्धत्व, निरीश्वरत्वादि हो जाने से जगत् में ही अन्धत्वापत्ति हो जायेगी। अतः अवच्छेदवाद भी उचित नहीं है। आकर ग्रन्थों में इसका

विस्तार से वर्णन मिलता है। अतः यहां संक्षेप में इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त है॥१॥

ऋतेऽर्थंयत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि तद्विद्यादात्मनोमायां यथाभासो यथा तम इत्यादि स्मृत्युक्ततयाघटनघटनापटीयस्या मायया स्वस्वरूपं जीवो न जानाति भगवत्कृपया सा निवर्त्तते इत्याह अनादीति।

भावार्थ - मायावृत जीव अपने स्वरूप को नहीं पहचानता। भगवत्कृपा से माया निवृत्त हो जाती है तभी स्वस्वरूप का परिज्ञान होता है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यप्रवर द्वितीय पद्य में कहते हैं--

अनादिमाया परियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्।
मुक्तं च बद्धं किलबद्धमुक्तं प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम्॥२॥

अनादिमायापरियुक्तं विशिष्टरूपं स्वरूपं यस्य तम्। एनं जीवजातं हरिप्रसादात्। मुक्तं सायुज्याद्यन्यतमं मुक्तिमन्तं विदुराहुः।

भावार्थ - अघटनघटनापटीयसी माया से सर्वतोभावेन आबद्ध है विशिष्टस्वरूप जिसका अर्थात् घटावृत दीपक की तरह उस जीव का बहिः प्रकाश परिज्ञान नहीं होता। यदि नित्यस्वरूप माया से जीव सर्वदा आबद्ध रहेगा तो उसका मोक्ष कभी नहीं होगा, फिर मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र और गुरुप्रदत्त उपदेश आदि निरर्थक हो जायेंगे ? इस आशंका का निराकरण ''तु'' शब्द के प्रयोग से किया है। यद्यपि जन्म-जन्मान्तरीय अविद्या, वासना के कारण जीव पर सुदृढ आवरण बना हुआ है किन्तु भगवत्कृपा से माया रूप आवरण हट जाने पर स्वस्वरूप एवं परस्वरूप का ज्ञान उसे हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं ''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥'' त्रिगुणात्मिका मेरी यह दैवी माया जीवों द्वारा स्वप्रयत्न से जीती नहीं जा सकती, जो पुण्यात्मा विधिवत् सद्गुरु के माध्यम से मेरी शरण में आजाते है वे ही उस माया को जीत सकते हैं, उसका पार पा सकते हैं। अन्वादेशरूप से कहते हैं कि इस जीव संघ को श्रीहरि के कृपाप्रसाद से जान लेते हैं सायुज्यादि अन्यतम मुक्ति के भागी होते हैं। सार्वज्ञादि गुणों से युक्त होते हैं। तभी वामदेवादि मुक्तात्माओं को अनुभव होता है कि मैं मनु हुआ, मैं सूर्य हुआ इत्यादि।

अथापि बद्धमुक्तप्रभेदबाहुल्यं जीवेषु बोध्यम्। किलावधारणे। यद्यपि मुक्तबद्धयोर्मध्ये मुक्तस्यैव प्राधान्यं तथापि प्रत्यक्षत्वाद्बद्धस्य प्रथममुपदेशः। तत्र बद्धा द्विविधाः। मुमुक्षवो बुभुक्षवश्चेति । मुक्ता अपि द्विविधाः मुक्ता नित्यमुक्ताश्चेति। नित्यमुक्ता द्विविधा आनंतर्याः पार्षदाश्च तत्रानंतर्याः विषाणवंश्यादयः पार्षदाः सनंदनादयः। एवमन्य-प्रभेदबाहुल्यमपि जीवेषु बोध्यम्। अन्ये च भेदाः सिद्धान्तरत्नांजलौ द्रष्टव्याः। नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान् ज्ञाज्ञौ अजावीशानीशौ। क्रियागुणैरात्म गुणैश्च तेषां संयोग हेतुरपरोऽपि दृष्टः।

भावार्थ - जीवों के स्वरूपलक्षणादि के विवेचनानन्तर उनके भेदों का निरूपण करते हुए आचार्यप्रवर कहते हैं-जीवों में बद्धमुक्तादि के भेद से विविध प्रकार समझने चाहिए। पद्य में ''किल'' यह अव्यय पद अवधारण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि मुक्तः बद्ध के क्रम में मुक्त जीवों की ही प्रधानता है, तथापि लोक में प्रत्यक्षरूप में सबको अनुभूत होने से पहले बद्धजीवों के स्वरूप गुणस्वभाव का वर्णन किया जाता है।

उन जीव भेदों में बद्धजीव दो प्रकार के हैं, एक मुमुक्षु दूसरे बुभुक्षु। मुमुक्षु भी स्वस्वरूपप्राप्तेच्छु, परस्वरूप प्राप्तेच्छु के भेद से दो प्रकार के बताये गये हैं। इसी प्रकार बुभुक्षु भी भाविश्रेयस्काम, नित्यसंसारी के भेद से दो प्रकार के होते हैं। एतावता मूलतः बद्धजीव चार प्रकार के होते हैं जो श्रीहरि की अनादि माया से कर्मबन्धन में पड़कर नानाविध शरीर धारण करते हैं।

मुक्त और नित्यमुक्त के भेद से मुक्त जीव भी दो प्रकार के निर्दिष्ट हैं। मुक्तजीवों में स्वस्वरूप प्राप्त और परस्वरूप प्राप्त ये दो भेद हैं। नित्यमुक्तों में भी आनन्तर्य (अन्तरङ्ग) पार्षद (बहिरङ्ग) के भेद से दो ही प्रकार बताये गये हैं। उनमें आनन्तर्य हैं वंशी, विषाण (शृङ्गवाद्य) यष्टि, शंख, चक्रादि नित्य सहचर हैं। सनकादि, विष्वक्सेन उद्धव, गरुड प्रभृति बहिरङ्ग (पार्षद) सहचर हैं। इस प्रकार मुक्तजीवों में भी चार भेद आकर ग्रन्थों रत्नमञ्जूषा, रत्नाञ्जलि आदि में विशद रूप में वर्णित हैं। उपर्युक्त मुक्तजीव भगवदाज्ञा किंवा स्वेच्छा से लोकोपकार हेतु विविध शरीर धारण करते हैं। इसी प्रकार

जीवों में अन्यान्य अवान्तर के बाहुल्य से असंख्य प्रकार समझने चाहिए ।

अनन्त नित्य, अनन्त चेतन जीवों का एक ही नित्यचेतन परमात्मा नियमन करता है और उनकी समस्तकामनाओं (इच्छाओं) को वही पूर्ण करता है। सर्वेश्वर परमात्मा सर्वज्ञ है तथा जीव अल्पज्ञ। दोनों अजन्मा हैं, ब्रह्म सर्वसमर्थ है जीव अल्पशक्ति वाला है। इसी तरह क्रियागुणों, आत्मगुणों से उनका संयोग होता है, इत्यादि अन्यान्य हेतु भी द्रष्टव्य है।

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः, संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः, सकारणं-करणाधिपाधिपः, तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्न्योभिचाकशीति, य आत्मनि तिष्ठन्प्राज्ञेनात्मनासंपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नांतरं प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ उत्सृजन्याति, तमेवविदित्वाति मृत्युमेति इत्यादि, स तत्र पर्येति अक्षन् क्रीडन् रममाणः सोऽश्नुते सर्वान्कामान् सह ब्रह्मणाविपश्चिता। यदा पश्यः पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशंपुरुषं ब्रह्मयोनिं तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति इत्यादि श्रुतिभिर्मोक्षदशायामपिभेद श्रवणाच्च भेदः स्वाभाविकः इति विज्ञायते।

भावार्थ - प्रधानपद वाच्य अचेतन-प्रकृति एवं क्षेत्रज्ञ पदवाच्य चेतन जीवात्मा इन दोनों का स्वामी अर्थात् जीव जगत् का स्वामी परमात्मा प्रसिद्ध है क्योंकि जीव, जगत् की स्थिति प्रवृत्ति स्वतन्त्र नहीं है, चेतन होने पर भी जब जीव ब्रह्माधीन स्थिति प्रवृत्तिक है तब जडत्व होने के कारण प्रधान में तो स्वतः पराधीनता है ही। गुणेशः-अर्थात् सत्व रजस्तमः ये तीन गुण मायावृत जीवों को तो अधीन कर लेते हैं किन्तु मुक्तजीवों और ब्रह्म का स्पर्श भी नहीं कर सकते। सेवकों की तरह दूर ही अवस्थित रहते हैं। अन्य शान्ति कान्ति सौशील्य-सार्वज्ञादि कल्याणमयगुण श्रीहरि में अविनाभाव से नित्य सम्बद्ध रहते हैं। अतः परमात्मा को गुणेश कहा गया है। ''संसारमोक्षस्थितिबन्ध हेतुः'' यहां पर संसार शब्द से स्थूल जगत्, त्रिगुणात्मिका माया और बद्धजीवों को समझना चाहिए। प्रपञ्चात्मक जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहृति का अभिन्न निमित्तोपादान कारण परमात्मा है। त्रिगुणात्मिका माया (मूल प्रकृति) नित्य होने से सदा भगवान् के कार्यों में सहकारिणी बनी रहती है। अतः वह स्थितिमात्र की अधिकारिणी हैं।

जो भगवदंशरूप अनन्तानन्त जीव है वे संसारासक्त होने से सदा बद्धभाव में बने रहते हैं। जो जीव भगवत्कृपाभाजन बन जाते हैं, शम, दम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य शरणागति प्रभृति साधन सम्पन्न हैं वे संसार बन्धन (जन्ममरणरूप) से मुक्त होजाते हैं। शरीरेन्द्रियाधिपति जीव, उसके अधिपति स्वामी ईश्वर है। वह कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थवान् है। ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति'' (मुण्डकोपनिषद् तृ. मु. प्र. खण्ड मन्त्र-१) इस मन्त्र का भाव है--जीवात्मा परमात्मा सुन्दर पंख वाले हंस की तरह दोनों साथ-साथ सख्यभाव से एक ही शरीर रूपी वृक्ष का आश्रय लेकर निवास करते हैं। परन्तु उन दोनों में से अन्यतर जीवात्मा मायासक्त होकर शरीरोपलक्षित सांसारिक विषय रूपी फल जो पिप्पलवत् मधुर लगते हैं खाता है। इस प्रकार फल भोगते-भोगते जीवात्मा तो दुर्बल हो उसी में आबद्ध हो जाता है। दूसरा परमात्मा विषय फल न खाता हुआ बलवान्, स्वतन्त्र, दिव्य प्रकाशवान् होकर विचरण करता है। ''य आत्मनि तिष्ठन् आत्मानं यमयति'' जो अणु स्वरूप जीवात्मा में अणुतर बनकर प्रविष्ट होता है वह परमात्मा उसका नियमन करता है। ''प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्'' मुक्तात्मा भगवद्धाम में प्राज्ञ अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा परिष्वक्त, पिता द्वारा अङ्कीकृत पुत्र की भांति और प्रियतमालिङ्गित पति की तरह आनन्द मग्न होकर बाहर भीतर भेदरूप में कुछ भी नहीं जानता, इसी भगवद्भावापत्ति रूप ब्रह्मानन्द-प्रेमानन्द को वैष्णवाचार्यों ने मोक्ष की संज्ञा दी है। जल में लवण की तरह ब्रह्म में लीन होने को मोक्ष नहीं कहा।

''प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ उत्सृजन्याति'' जिस प्रकार शकट (छकडा) आवश्यक सामग्री से भर जाने पर सारथि द्वारा पूर्वस्थान को त्याग कर अपने गन्तव्य स्थान की ओर पहुँचाया जाता है उसी प्रकार शकट स्थानीय मुमुक्षु जीव भक्तिज्ञान प्रपत्ति आदि साधन सम्पन्न होकर रथि स्थानीय प्राज्ञ परमात्मा से सम्बन्ध विशेष को प्राप्त होकर पूर्व शरीर त्यागता हुआ भगवत् प्रदत्त दिव्य शरीर से भगवद्भाव को प्राप्त हो जाता है।

''वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था: विद्यतेऽयनाय॥''

(शु० यजु० अ० ३१ मन्त्र १८)

जगज्जन्मादिकारण उस परब्रह्म पुरुषोत्तम को मैं जानता हूँ जो महतो महीयन् है। जो तमः शब्द वाच्य प्रकृति मण्डल से परे है। जो सहस्रादित्य संकाश, निरतिशय उज्ज्वलादिगुणों का आश्रय स्वरूप दिव्य मंगल विग्रह वाला है। शरणैकनिष्ठ मुमुक्षु उनकी विधिवत् उपासना कर मृत्युरूप संसार का अतिक्रमण करता है तदनन्तर परमपद को प्राप्त होजाता है। उस परम पुरुष परमात्मा को भली प्रकार जाने विना परम पद (मोक्ष) प्राप्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

''एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपसम्पन्नः स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते। स उत्तमः पुरुषः स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाणः''
''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता।''

(छान्दोग्योपनिषद् अ० ८ खं० १८ मन्त्र ३)

भक्ति ज्ञान प्रपत्ति रूप साधन सम्पन्न यह प्रत्यगात्मा इस प्राकृत शरीर से उठकर (निकलकर) परं ज्योतिः शब्द वाच्य परब्रह्म भगवान् श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है। उनके समीप पहुँच कर अपने वास्तविकरूप अपहत पाप्मत्वादिगुणयुक्त भगवदीय दिव्य गुणों से सम्पन्न हो जाता है। वह बन्धनमुक्त उत्तम पुरुष भगवद्धाम में अपने आराध्य परमात्मा के साथ सर्वतोभावेन आनन्द का अनुभव कर लेता है, अथवा जहाँ जहाँ स्वामी विचरण करते हैं वहाँ वहाँ तदनुरूप बनकर अनुगमन करता है। भक्षण करते हुए नानाविध क्रीडा करते हुए हँसते हँसाते, अत्यन्त विनोद के साथ रमण करता है। इस प्रकार सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर स्वाराध्य परब्रह्म के साथ सर्वविध कामनाओं, सुखों का अनुभव करता है।

'यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥'

अर्थात् जब वह मुक्तात्मा दिव्य धाम में काञ्चनवत् देदीप्यमान् विग्रह निखिलजगदभिन्न निमित्तोपादान होने से कर्त्ता, उन सर्वेश्वर पुरुषोत्तम का अपरोक्ष साक्षात् दर्शन कर लेता है, सर्वज्ञतादिगुणयुक्त वह प्रत्यगात्मा पुण्य पापरूप बन्धन से विमुक्त, निष्कलंक, सर्वविधदोष लेश रहित होकर

परमात्मा की समता को प्राप्त होता है। अर्थात् भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष का भागी बन जाता है। जहाँ से पुनः इस दुःखमय संसार में नहीं आना पड़ता। इत्यादि पूर्वोक्त श्रुति वाक्यों द्वारा मोक्ष दशा में भी भेद का स्पष्ट प्रतिपादन होने से जीव ब्रह्म का भेद स्वाभाविक है यह सिद्ध होता है।

ननु तत्वमसि, नान्योतोस्ति द्रष्टा, अयमात्मा ब्रह्मेत्यादि-श्रुतिभिः। ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातन इत्यादि स्मृतिभि-श्चाभेदः प्रतीयते इति चेत्, ज्ञाज्ञौद्वौसुपर्णौसयुजावित्येवमादि श्रुतिशतैरात्माभेदप्रतिषेधात्। तत्त्वमसीत्यत्र त्वं पदेन जीवात्मनः जीवान्तर्यामिणः परमात्मन एवाभिधानात् । यद्वा तच्शब्दाग्रे षष्ठ्यादि-विभक्तीनां सुपां सुलुगित्यादिना प्रथमैकवचनादेशः, ऐतदात्म्यमिदं सर्वं सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा इति श्रुत्यनुसारात्, ननुब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति, यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्। तत्केन कं पश्येदितिमोक्षदशायां भेदनिषेधादभेदः स्वाभाविक इति चेन्न। जीवस्याविर्भूतबृहद्गुण-कत्वेनब्रह्माभेदोपपत्तेः कीटभृङ्गन्यायात्। द्वे ब्रह्मणीवेदितव्ये इतिश्रुतेः। यत्र त्वस्येति श्रुतिः सुषुप्तिपरा तस्माद्भेद एव स्वाभाविक अभेदस्तु चित्त्वादिकृतः अतएव जीवोब्रह्मांशत्वेन भिन्नाभिन्न इति वदन्ति, अन्ये तु कारणात्मना जात्यात्मना चाभेदः कार्यात्मना व्यक्तात्मना च भेद इति भेदाभेदयोर्विरोधाभावात्सर्वमपि भिन्नाभिन्नं प्रतीयते इति वदन्ति तच्चिन्त्यम्।

भावार्थ - जिज्ञासा करते हैं- ''तत्त्वमसि'' ''नान्योऽतोऽस्तिद्रष्टा'' ''अयमात्माब्रह्म'' इत्यादि श्रुतिवाक्यों, ''ममैवांशो जीवलोकेजीवभूतः सनातनः'' इत्यादि स्मृति वाक्यों से जीव-ब्रह्म में अभेद का ही समर्थन किया है फिर आप उनमें स्वाभाविक भेद क्यों मानते हैं? इस पर कहा जाता है कि ''ज्ञाज्ञावीशानीशौ'' ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'' ''पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा'' इत्यादि शतशः श्रुतियों द्वारा अभेद का निषेध किया गया है। ''तत्त्वमसि'' इस महावाक्य में भी त्वं पद से जीव और जीवान्तर्यामी परमात्मा का ही कथन होने से भेद स्वाभाविक है। अथवा तत् शब्द के आगे षष्ठ्यादि विभक्तियों का छन्द में ''सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्या-जालः'' इस सूत्र से लुक् हो जाता है, या उसमें ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्''

''सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा'' इत्यादि श्रुति वचनानुसार प्रथमाविभक्ति का एक वचन आदेश होकर ''स्वमोर्नपुंसकात्'' इससे लुक् हो गया। इस प्रकार अभेद परक वाक्यों द्वारा भी स्वाभाविक भेदाभेद निर्दिष्ट हो ही जाता है।

फिर आशंका करते हैं- ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' ''यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्'' अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है, जहां सकल चराचर जगत् उस ब्रह्म की आत्मा ही मानी जाती है तो उस स्थिति में ''तत्केन कं पश्येत्'' कौन किसको देखे, इस प्रकार मोक्षदशा में भेद का निषेध होने से अभेद ही स्वाभाविक हुआ। ऐसा भी आप नहीं कह सकते, क्योंकि मुक्त जीव में ब्रह्मगत बृहद्गुण सार्वज्ञादि के आविर्भूत होने से ''भ्रमरकीटवत्'' इस न्याय से जीव का ब्रह्माभिन्नत्व होना कहा गया है। ''द्वे ब्रह्मणीवेदितव्ये'' इस वाक्य से जीव को भी ब्रह्मरूप मानने से और ''यत्र त्वस्यसर्वमात्मैवाभूत्'' इसका तात्पर्य सुषुप्ति अवस्था परक मानने से मोक्षदशा में भी भेद ही स्वाभाविक है। अभेद तो चेतनत्वादि साधर्म्यकृत है। अत एव जीव ब्रह्मांशत्व होने से स्वाभाविक भिन्नाभिन्नत्व है ऐसा समस्त वैष्णवाचार्य मानते हैं, कहते भी हैं।

कुछ आचार्य कारणात्मना और जात्यात्मना जीव ब्रह्म में अभेदता है किन्तु कार्यात्मना और व्यक्त्यात्मना से भेदता है इसलिए भेदाभेद में किसी प्रकार विरोध न होने से स्वाभाविक भिन्नाभिन्नत्व प्रतीति होती है ऐसा कहते हैं किन्तु आकर ग्रन्थों में इस प्रकार का कहीं भी संकेत नहीं है अतः यह केवल कल्पित तर्क होने से चिन्तनीय है ॥२॥

अचेतनं निरूपयति अप्राकृतमित्यादिना-,अप्राकृतम्-इस पद्य के द्वारा अचेतन तत्व का निरूपण किया गया है।

अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्।
माया प्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र।।३।।

यद्यपि चेतनाचेतनयोश्चेतनस्यैव प्राधान्यं तत्रापि परमचेतनस्य परमात्मन एव, अत परमात्मनः प्रथमं निरूपणं युक्तं तथापि जीवात्मनोऽहमर्थतया भासमानत्वेन सर्वजनप्रत्यक्षत्वात् प्रथमं जीवो निरूपितः। ततश्च घटपटादिरूपेण सर्वज्ञानविषयत्वादनात्मनो निरूपणम्। परमात्मनश्च परमकाष्ठात्वेनोपरिष्टादित्यस्ति संगतिः।

समीचीनाश्रुतिश्च। इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्चपरं मनः । मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः। महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरूषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः। गम्यते इति गतिः परमात्मा।

भावार्थ - यद्यपि चेतन और अचेतन में चेतन का ही प्राधान्य होता है उसमें भी परमचेतन परमात्मा का ही प्राधान्य है, अतः अभ्यर्हित होने से पहले परमात्मा का निरूपण करना उचित था तथापि जीवात्मा का अहमर्थत्व रूप से भासमान होने के कारण सर्वजन प्रत्यक्षत्व सिद्ध है इसीलिए सर्वप्रथम जीवतत्व का निरूपण किया गया। उसके बाद घटपटादि रूप से सबके लिए प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय होने के कारण अनात्म (अचेतन) तत्व का निरूपण किया गया है। परमात्मा का सर्वाध्यक्षत्व, सर्वात्मत्व, सर्वेश्वरत्व होने से पराकाष्ठारूप सर्वोपरिष्ठात् चरमसीमा में विवेचन किया जाना युक्तियुक्त या सुसङ्गत है। इस विषय में श्रुति प्रमाण दर्शाते हैं-''इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्चपरं मनः। मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः। महतः परमव्यक्तमव्यतमात्पुरुषः परः। पुरुषान्नपरं किञ्चित् सा काष्ठा सा परागतिः।''

इन्द्रियों से श्रेष्ठ घटपटादि पदार्थ हैं, पदार्थों से परे मन है, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से श्रेष्ठ है आत्मा (जीवात्मा) जो अपने चेतन धर्म से महान् सर्व शरीर में व्याप्त है, उससे परे अव्यक्त रूप मूल प्रकृति है जो अपने प्रभाव से चेतन धर्मा आत्मा को आबद्ध करती है। उस अव्यक्त से परे पुरुष अर्थात् परमात्मा है। पुरुष से परे कुछ नहीं है वही काष्ठा-अवधि है, वही परागति है। गम्यते प्राप्यते-इस अर्थ में गम् धातु से क्तिन् प्रत्यय करने और म कार का लोप करने पर गति शब्द निष्पन्न होता है, उसका अर्थ हुआ परमात्मा, स्मृति में भी ''शिष्यतेशेषसंज्ञः'' कहकर अनन्तरूप परमात्मा का प्रतिपादन किया है।

अचेतनं त्रिविधं मतं संमतमाचार्याणामिति शेषः। प्राकृतम्, अप्राकृतं कालश्चेति । गुणत्रयाश्रयं द्रव्यं प्रकृतिस्तयाजातं प्राकृतम्। ब्रह्माण्डं तदंतर्वर्ति जरायुजादि चतुर्विधशरीरं समष्टि व्यष्टिरूपमन्न-पानादिकं चेति । एवं पंचापि कोशाः। तत्रान्नमयः स्थूलदेहादि, प्राणमयः, प्राणेन्द्रियादि, मनोमयः संकल्पविकल्पादि वृत्तिविशिष्टं

मनः। विज्ञानमयो-ऽध्यवसायादिरूपवृत्तिविशिष्टा बुद्धिः। आनन्द-मयः सम्प्रज्ञातसमाधिस्थायिसुखैकवृत्त्युपेतं चित्तत्वमिति विवेकः। शुद्धसत्त्वमप्राकृतं द्रव्यम्। वैकुंठगतप्रासादमण्डपगोपुरचत्वर-वृक्षादिरूपम्। कालः क्षणादिपरार्धपर्यन्तः अथहवाव नित्यानि पुरुषः प्रकृतिरात्माकाल इत्यादि श्रुतौ। प्रकृतिपुरुषाभ्यांकालस्य विभागोक्ते र्युक्तमेवोक्तविभागः। तत् अचेतनं मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यम्। आदिपदेन अविद्यादिपदानां ग्रहणम्। गुण साम्यावस्था प्रधानम्। ततोमहत्तत्त्वं ततोऽहंकारः। स त्रिविधः सात्त्विकादिभेदात्सात्त्विका-न्मनोदेवाश्च, राजसादिन्द्रियाणि, तामसाद्भूतानि तन्मात्राश्चेति सृष्टिक्रमः। व्युत्क्रमेण लयश्च ।

भावार्थ - आचार्यों ने अचेतन द्रव्य तीन प्रकार का माना है- प्राकृत, अप्राकृत और काल। सत्व रजस्तमः इन तीन गुणों के आश्रय रूप द्रव्य को प्रकृति और इसी प्रकृति से निर्मित ब्राह्माण्ड को प्राकृत कहते हैं। प्राकृत ब्रह्माण्ड और उसके अन्तर्वर्ति जरायुज-मनुष्य, पश्वादि, अण्डज-कूर्म, सर्प, खगकुलादि, स्वेदज-मशक, मत्कुण प्रभृति तथा उद्भिज्ज-वृक्ष, लता, वनस्पति आदि चतुर्विध शरीर एवं समष्टि-व्यष्टिरूप मानव-ब्राह्मण, क्षत्रियादि, पशु-गोमहिषादि रूप से व्यवहृत किया जाने वाला चराचर जगत्, अन्न पानादिक भोज्यपदार्थ यह सब प्राकृत द्रव्य माना गया है। इसी प्रकार अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय-आनन्दमय के भेद से पञ्चविध कोष और तदन्तर्यामी जीव-ब्रह्म का निरूपण शास्त्रों में किया गया है। उनमें स्थूलदेह अन्नमयकोष, पञ्चविधप्राण ही प्राणमय कोष है। अन्तःकरण रूप संकल्प विकल्पात्मक तत्व मनोमय कोष कहलाता है। निश्चयात्मक-अध्यवसायवृत्ति विशिष्टबुद्धि को विज्ञानमय कोष की संज्ञा दी है। सम्प्रज्ञात समाधिरूप स्थायी सुखैक वृत्तियुक्त चित् तत्त्व (जीवात्मा) को आनन्दमय कोष कहा गया है।

"आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" इत्यादि शास्त्र वचन के अनुसार तमोगुणोपलक्षित प्राकृतमण्डल से परे आदित्यवत् समुज्ज्वल, पारशून्य, अनावरक, शुद्धसत्व को अप्राकृत द्रव्य कहते हैं। वह आमोद-प्रमोद,

परमधाम, परमव्योम, वैकुण्ठ, साकेत, शिवलोक, गोलोकादि विविध दिव्यधाम तद्गत दिव्य प्रासाद, मण्डप, गोपुर, चत्वर, वृक्ष,लतादि से नित्य समलंकृत रहते हैं। मुक्तात्मा, पार्षद और परमात्मा के भोग्य वस्त्र, आभूषण, स्थानासनादि सब दिव्य चिद्घन स्वरूप होने पर भी चेतन धर्मशून्य होने से अचेतन कहा जाता है। अपने नित्य विहार स्थल उस दिव्यधाम के विषय में पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं--

''न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।''

(गीता अ. १५) इत्यादि।

जिस दिव्यधाम को सूर्यचन्द्रं अग्नि आदि प्रकाशित नहीं करते वह स्वयं अनन्त प्रकाशयुक्त है, जहां पहुँच कर मुक्तात्मा फिर संसार में नहीं लौटते वह मेरे सर्वोत्कृष्ट वैकुण्ठ गोलोकादि धाम हैं।

क्षण-लव-काष्ठा-मुहूर्त-अहोरात्र-पक्ष-मास-संवत्सरादि परार्द्ध-पर्यन्त खण्डों में विभक्त सखण्ड और चराचर जगत् का नियन्ता परमात्मा का नियम्य अखण्ड रूप नित्य अचेतन द्रव्य को काल कहते हैं। ''अथ ह वा व नित्यानि पुरुषः प्रकृतिरात्मा कालः'' इत्यादि श्रुतियों में काल को भी नित्य बताया है। प्रकृति-पुरुष से पृथक् रूप में काल का विभाग युक्ति संगत ही है।

अब उस प्राकृतरूप अचेतन का विशेष विवेचन करते हुए सृष्टि प्रलय का निरूपण करते हैं। ''मायाप्राधानादिपदप्रवाच्यम्'' यहां आदि पद से अविद्या का संकेत है। अर्थात् प्राकृत द्रव्य माया, प्रधान, अविद्या आदि पदों का वाच्य है। सत्वरजस्तमोरूप त्रिविध गुणों की साम्यावस्था को प्रधान कहते हैं। ''एकोऽहं बहुस्याम्'' इत्यादिरूप में परब्रह्म परमात्मा की संकल्पात्मक इच्छाशक्ति द्वारा मूलप्रकृति-प्रधान में विक्षोभ पैदा होता है जिससे महत्तत्व संज्ञक बुद्धि प्रकट होती है। उससे अहङ्कार पैदा हुआ। वह सात्विक-राजस-तामस के भेद से तीन रूपों में विभक्त होजाता है। इनकी ग्रन्थान्तरों में वैकारिक, तैजस, भूतादि की संज्ञा दी है।

सात्विक अर्थात् वैकारिक अहंकार से मन और इन्द्रियों के देवता प्रकट हुए। राजस अपरनाम तैजस अहंकार से पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय पैदा हुए। तामस अर्थात् भूतादि अहंकार से आकाश, वायु, तेज, जल,

पृथिवी ये पंच महाभूत प्रकट हुए हैं। जिस उत्क्रम से सृष्टि होती है उसके व्युत्क्रम से प्रलय होता है। सृष्टिक्रम में सबसे अन्त में पृथिवी की उत्पत्ति बताई गयी है ठीक उसके विपरीत व्युत्क्रम से प्रलय का वर्णन किया है। सर्वप्रथम पृथिवी का जल में लय, जल का तेज में इस प्रकार प्रकृति तक पहुँचना प्रलय की स्थिति है।

शुक्लादिभेदाः सत्त्वगुणरजोगुणतमोगुणाः। समेपि सर्वेपि तत्र मायादिपदवाच्ये वस्तुनि सत्त्वरजस्तमोमयी मायेत्यर्थः। इयमेव माया स्वस्वकर्मवशीभूतानां जीवानां भगवत्स्वरूपतिरोधानं करोति। इयं माया त्रिगुणात्मिका समष्टिरूपा एकैव यथा वनसस्यादि व्यवहारः।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामित्यादिश्रुतेः। व्यष्टिरूपात्वनेका यथा वृक्षधान्यादिव्यवहारः। अविद्यायाः द्वे शक्ती आवरणविक्षेपौ तत्रावरणशक्त्यावृतस्य जीवस्य स्वर्गनरकादि संसारो जायते विक्षेपशक्तिविशिष्टस्यजीवन्मुक्तस्य संसारो न जायते भिक्षाटनादि-प्रवृत्तिं विना। जीवन्मुक्तिस्तु अविद्या निवृत्तावपि चक्रभूमिवत्प्रारब्ध-कर्मभोगाय देहाद्यवस्थानम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्मकल्पकोटिशतैर-पीतिश्रुतेः। केचित्तु आवरणविक्षेपशक्तिमत्या मूलाविद्यायाः प्रारब्धकर्मवर्तमानदेहाद्यनुवर्त्ति प्रयोजको विक्षेपशक्त्यंश इति वदन्ति। अपरे तु ईश्वरकोटौ सगुणसंकर एव विक्षेपशक्तिर्विशिष्टा न तु निर्गुणः। प्रमाणं चात्र कमलासनात्। प्रतिसर्गं जन्मोक्तिः विष्णोस्त्ववतारे-ष्वाविर्भाव एव जन्म, गर्भप्रवेशमात्रेण जन्मोक्तौ तु उत्तरापुत्रत्वमपि स्याद्भगवत इत्याहुः।

भावार्थ - ''शुक्लादिभेदाश्च समेऽपितत्र'' इस चतुर्थ चरण में आद्याचार्यचरणों ने अचेतन प्रकरण का उपसंहार किया है।

सत्वगुण-रजोगुण-तमोगुण इन तीनों गुणों का शान्त-उग्र-मुग्ध-रूप स्वभाव के कारण गुणगत स्वभावानुरूप क्रमशः शुक्ल-रक्त-कृष्ण-वर्णात्मक स्वरूप वर्णित है । ये सभी गुणरूप स्वभाव उस माया प्रधान अविद्या पदवाच्य वस्तु प्रकृति में समन्वित है। अतः इसे सत्वरजस्तमोमयी माया ऐसा कहते हैं। यही माया सकल जीव संघ को जो अपने अपने कर्म के वशीभूत हैं, उनके समक्ष भगवद्गुण स्वरूपादिका आवरण द्वारा तिरोहित

करती है। यह माया गुणों का समष्टि रूप एक है जैसे वृक्षलताओं का समष्टि वन, ब्रीह्यादिधान्य का समष्टि रूप सस्य इस रूप में व्यवहार होता है। इसमें श्रुति प्रमाण है ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'' इत्यादि।

वन का वृक्ष-लता-वनस्पति रूप सस्य का ब्रीहि-यव-मुद्ग (मूंग) माष (उड़द) चना इत्यादि व्यष्टि रूप व्यवहार है। अविद्या की दो शक्तियां है आवरण और विक्षेप। उनमें से आवरण शक्ति द्वारा आवृत (घिरे हुए) जीवों के लिये स्वर्ग नरक आदि संसारचक्र बना रहता है, किन्तु विक्षेपशक्ति विशिष्ट जीवन्मुक्त जीवों के लिए भिक्षाटनादि प्रवृत्ति को छोड़कर अन्य संसारचक्र नहीं रहता। जीवन्मुक्ति की अवस्था में तो अविद्या निवृत्ति होने पर भी चक्रभूमि की तरह प्रारब्ध कर्मभोग के लिये शरीरादि की स्थिति बनी रहती है। श्रुति कहती है ''नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि'' अर्थात् करोड़ों कल्प तक भी बिना भोग के शुभाशुभ कर्म क्षीण नहीं होते। अतएव देहादि अवस्थान कर्मभोग का ही स्वरूप है। कुछ आचार्य कहते हैं- आवरण-विक्षेप शक्तिवाली मूल प्रकृति का विक्षेपशक्त्यंश प्रारब्धकर्म में वर्तमान देहादि की अनुवृत्ति का प्रयोजक है। दूसरे आचार्य तो ईश्वर कोटि में सत्वादि गुणों का सांकर्य ही विक्षेप शक्ति की विशेषता है गुणराहित्य होना नहीं है ऐसा कहते हैं। इसमें प्रमाण है प्रतिसर्ग में चतुर्मुखी ब्रह्मा से सृष्टि का प्रादुर्भाव जिसमें चराचर जगत् की उत्पत्ति का वर्णन है। विष्णु के अवतारों में तो आविर्भाव मात्र है प्रारब्धवश गर्भवास और जन्म नहीं कह सकते। अन्यथा यदि गर्भ प्रवेश तथा बहिर्गमन मात्र से जन्म कहा जाय तो उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए भगवान् श्रीकृष्ण का गर्भ प्रवेश निर्गमन को भी जन्म कहना पड़ेगा। ऐसा कहा गया है ॥३॥

जीवप्रकृती निरूप्य ब्रह्मस्वरूपमाह स्वभावेति--

भावार्थ - पूर्वोक्त प्रकार से जीवतत्व और प्रकृतितत्व का निरूपण करके ब्रह्म स्वरूप का निरूपण करते हैं - स्वभावतोऽपास्त समस्तदोषम्- इत्यादि पद्य से--

स्वभावतोऽपास्त समस्तदोषमशेषकल्याणगुणैक राशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥४॥

वयं कृष्णं ध्यायेम इत्यन्वयः। कीदृशं स्वभावतोपास्त-समस्तदोषं स्वभावेनैव निरस्तनिखिलदोषगंधम् ''आत्मा अपहत पाप्मे''त्यादि श्रुतेः। अशेषकल्याणगुणैक राशिम् अनन्तानवद्यकल्याण-गुणैकपुंजः, ''अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्'' ''विवक्षित गुणोपपत्तेश्च। अंतर्याम्याधिदैवादिषुतद्धर्मव्यपदेशात्। अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेश्चेत्याद्यधिकरणेषु अत्यादरेण गुणानन्तत्वप्रतिपादनात्।

भावार्थ - हम कृष्ण का ध्यान करें ऐसा अन्वय है। वह कृष्ण कैसा है? जिसका ध्यान विधेय है? इस आकांक्षा में कहते हैं ''स्वभावतोऽपास्त-समस्तदोषम्'' अर्थात् स्वभाव से ही निरस्त हैं जन्मादि विकार-सत्वादिगुणत्रय-अविद्यादि क्लेशरूप दोष जिनके। जैसे अग्नि सूर्यादि में शीतान्धकारादि दोष स्वतः अपास्त हैं उसी प्रकार परमात्मा में पूर्वोक्त सभी दोष स्वतः निरस्त हैं, अतः पुरुषोत्तम परब्रह्मादि पदवाच्य श्रीकृष्ण निखिलदोषगन्ध शून्य हैं।

''आत्मा अपहत पाप्मा'' इत्यादि श्रुतिवचन इसमें प्रमाण है। दोष रहित होना ही ब्रह्म का पूर्ण स्वरूप नहीं है क्योंकि दोष राहित्य की भाँति गुणराहित्य हो तो ध्येय कैसे होगा ? इस पर कहते हैं ''अशेषकल्याण-गुणैकराशिम्'' अशेषाणां कल्याणगुणानामेकोराशिः आश्रयस्थानम् अर्थात् जैसे समुद्र अनन्त रत्नों का आश्रय है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण अनन्त अनवद्य कल्याण गुणगणों के आश्रय या पुञ्ज स्वरूप हैं अतः एव वे ध्येय ज्ञेय हैं। शारीरक मीमांसा सूत्र (ब्रह्मसूत्र) ''अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्'' (१-१-२१) ''विवक्षितगुणोपपंत्तेश्च'' (१-१-१६) ''अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः'' (१-१-२२) इत्यादि अधिकरणों में अत्यन्त आदर के साथ भगवद्गुणों की अनन्तता प्रतिपादित हुई है। तथाहि ''अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरणमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशआप्रणखात्सर्वएव सुवर्णस्तस्य यथा कप्यासम्पुण्डरीकमेवाक्षिणी तस्योदिति नाम स एष वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेतिह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद तस्य ऋक् च साम च गेष्णावित्यधिदैवतमथाध्यात्ममथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते'' इत्यादि छान्दोग्य श्रुति में आदित्य और अक्षि (नेत्र) के अन्दर अवस्थित आत्मा मुमुक्षुजनों का ध्येय परमात्मा ही है जीवात्मा नहीं। क्योंकि उस परमात्मा के

ही अपहत पाप्मत्व, सर्वात्मत्वादि धर्मों का उपदेश होने से तदतिरिक्त जीवात्मा कैसे हो सकता है। इसी प्रकार ''मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्पः'' इत्यादि श्रुति वचनों में मनोमयत्व-सत्यसङ्कल्पत्वादि विवक्षित गुणों की उपपत्ति ब्रह्म में ही हो सकती है, जीवादि में नहीं।

एवमेव-''यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवीशरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष ते आत्मान्तर्याम्यमृतः इत्यादि बृहदारण्यकोपनिषद् के मन्त्रानुसार पृथिव्यादि अधिदेवादि सर्वपर्यायों में श्रूयमाण अन्तर्यामी परमात्मा ही है, क्योंकि उनमें सर्वनियन्तृत्वादि समस्त ब्रह्मधर्मों का ही व्यपदेश मुख्य व्यवहार हुआ है। अतः यहां पर अन्तर्यामित्वादि धर्म न देवतान्तरों के न वा जीव के ही हो सकते हैं वे सब नियम्य कोटि में आते हैं। आथर्वणिकों द्वारा उदाहृत ''अदृश्यमग्राह्यम्'' इत्यादि गुणवाला तत्व परमात्मा ही है, जीवतत्व-प्रकृतितत्व नहीं है। क्योकि ''यः सर्वज्ञः सर्वविद्'' सर्वज्ञत्व सर्ववेत्तृत्वादि धर्म परमात्मा के ही हैं, अन्य के नहीं ।

व्यूहाङ्गिनं वासुदेवप्रद्युम्नानिरुद्धसंकर्षणरूपोव्यूहः समुदायः तस्य अंगी वासुदेवाद्याः चतुःकरणं यस्य तमित्यर्थः। ब्रह्म व्यापकम्। सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म। निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतां आनन्दो ब्रह्म इदं सर्वं यदयमात्मा वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्, मृत्तिकेत्येवसत्यम् इत्यादि श्रुतिभिर्ब्रह्मणो-व्यापकत्वमनन्तत्वं प्राकृतहेयगुणरहितत्वं च प्रतिपाद्यते। अणोरणीयान्महतोमहीयानित्यादि श्रुतेरणुत्वमहत्त्वादिकमपि ब्रह्मण्यस्ति। अङ्कादिस्थस्यमुखे ब्रह्माण्डादिकं पश्यतां यशोदादीनां प्रत्यक्षमप्यणुत्वमहत्त्वयोः प्रमाणम्।

भावार्थ - यहां पर व्यूह शब्द वासुदेव-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध-सङ्कर्षण रूप है। मञ्जूषादि में केशवादि द्वादश स्वरूपों और चतुर्विंशति अवतारों को भी व्यूहरूप में परिगणित किया है। इस समग्र समुदाय का अङ्गी (प्रधान) श्रीकृष्ण हैं। चतुर्व्यूह में वासुदेव आद्य है जिस समुदाय का वह ऐसा अर्थ किया गया है। अतः व्यूहाङ्गी श्रीकृष्ण का हम ध्यान करें। वह व्यूहाङ्गी होते

हुये सर्वव्यापक भी है अतः ब्रह्म है। इसमें प्रमाणभूत निम्नोद्धृत श्रुतिवचनों ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' ''निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्'' ''यस्यामतं तस्यमतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम-विजानताम्, आनन्दो ब्रह्म इदं सर्वं यदयमात्मा वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्, मृत्तिकेत्येवसत्यम्'' इत्यादि द्वारा ब्रह्म की व्यापकता, अनन्तता, सच्चिदानन्दस्वरूपता, सत्वादिप्राकृत हेयगुणरहितता आदि प्रतिपादित होती है। अणोरणीयान् महतोमहीयान् अणुरूप जीव के अन्तर्यामी होने से अणोरणीयान् और आकाशकालादि अति महान् पदार्थों को भी उनसे महद्रूप में आवृत कर नियमन करने से महतो महीयान् इत्यादि रूप से ब्रह्म में अणुत्व महत्वादि विरुद्ध धर्मों का समन्वय किया है। इसी का प्रत्यक्ष स्वरूप श्रीकृष्ण ने माता यशोदा के अंक में स्तनन्धय शिशु के रूप में स्थित रहकर तथा अर्जुन के रथ में सारथिरूप में विराजमान रहकर उन्हें अपने मुखारविन्द और श्रीविग्रह में विश्वरूप का दर्शन कराया। यह अणुत्व महत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

परं प्रकृतिपुरुषाभ्यामिति शेषः। द्वाविमौपुरुषौ लोकेक्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते। उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । योलोकत्रयमाविश्य विभर्त्त्यव्यय ईश्वरः । अतोऽस्मिलोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद् भजतिमां सर्वभावेन भारत। इति गुह्यतमं शास्त्रं इदमुक्तं मयानघ !। एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारतेति गीतासु।

भावार्थ-पद्य में परं शब्द का प्रकृति और पुरुष से परे अर्थात् उत्कृष्ट ऐसा अर्थ है। ब्रह्मा-शिवादि प्राप्तैश्वर्य पुरुष कोटि में व्यवहृत होने से उन से भी परे ऐसा कहा गया है। अष्टम पद्य में ''ब्रह्मशिवादिवन्दितात्'' कहकर यही भाव व्यक्त किया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है-

''द्वाविमौपुरुषौलोकेक्षरश्चाक्षरएव च। क्षरः सर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः॥ अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्॥ स सर्वविद् भजति मां

सर्वभावेन भारत। इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ॥ एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत'' इत्यादि। अर्थात् क्षर अक्षर ये दो पुरुष विश्व में जानने योग्य हैं। अन्नमय पुरुष चेतनाधिष्ठित देह क्षर शब्द वाच्य नश्वर है जिसे सर्वाणि भूतानि कहकर प्रभु ने संकेत किया। क्षरः यह एक वचन प्राकृत रूप में जात्यभिप्राय से है। दूसरा प्रकृति के कार्यरूप समुदाय जो कूट कहा जाता है उसमें स्थित परिणाम रहित अविनाश अक्षर पुरुष जीव कहलाता है। यहां पर भी एक वचन का निर्देश स्वयं ज्योतिः स्वरूप होने के कारण जात्याभिप्राय से है । महर्षि सनत्सुजात कहते हैं ''आचार्य की कही हुई जो जीवत्वादिजाति है वह नित्य अजर अमर है। इन दोनों क्षर-अक्षर पुरुषों से उत्कृष्ट अत्युत्तम सर्वनियन्ता सर्वेश्वर जो अन्य चेतनाचेतन भिन्न पुरुष है वह परमात्मा कहा जाता है। जो आत्मरूप से तीनों स्वर्ग-मर्त्य-पातालादि लोकों में प्रवेश कर सबका धारण पोषण करता है। अतः वह अविनाशी ईश्वर अर्थात् कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थवान् सर्वेश्वर है। उक्त पुरुषोत्तम शब्द का (योलोकत्रयम्) इसमें जो यत् शब्द है उससे कहीं अन्य का ग्रहण न हो इसलिए स्वयं में उसका निर्वचन करते हुये कहते हैं यस्मात् अर्थात् जिस क्षर रूप जड पुरुष से मैं अतीत भिन्न हूँ और अक्षररूप कूटस्थ भोक्ता विज्ञानमय चेतन पुरुष जीव से भी उत्तम हूँ। क्षराक्षर पुरुष स्वरूपतः भिन्न होने पर भी मदधीन स्थिति प्रवृत्तिक होने से मुझ परमेश्वर से अभिन्न भी है। अतः भोक्ता, भोग्य, प्रेरक त्रिविध रूप ब्रह्म है। ''भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतत्'' इत्यादि श्रुतिवचन इसमें प्रमाण है। अतः लोकशब्द वाच्य इतिहास पुराणों में तथा वेदों में भी मैं पुरुषोत्तम नाम से विख्यात हूँ। हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! जो साधक शास्त्रों का अनुशीलन करते हुये असन्दिग्ध होकर पूर्वोक्त रूप से मुझ पुरुषोत्तम को जानता है वह सर्वविद् कहलाता है और वही सर्वतोभावेन मेरा भजन अर्थात् मेरी सेवा कर सकता है। इस प्रकार वेदादि शास्त्रों का सारार्थ कहकर पूर्वोक्त वस्तु की प्रशंसा करते हुये प्रभु कहते हैं-''हे निष्पाप ! हे भारत ! ऐसे अति गोपनीय गीतारूप शास्त्र मैंने तुम्हें बताया इसको कोई भी जानकर मोक्षकामना से ग्रहण करने की योग्य बुद्धि वाला हो जाता है और यावज्जीवन कृतकृत्य भी रहता है।

अव्यक्तमक्षरे लीयतेऽक्षरस्तमसिलीयते तमः प्रकृतिसाम्या-वस्थापरे देवे एकीभवतीतिश्रुतेः। वरेण्यं सौन्दर्यसीमानं "त्रैलोक्य-सौभगमिदं च निरीक्ष्यरूपम् यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्" इति भागवतोक्तेः। कमलेक्षणं प्रफुल्लपुण्डरीकनयनम् य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुररुषोदृश्यते हिरण्यश्मश्रु आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णस्त-स्ययथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदितिनाम सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः। उदेति हवै सर्वेभ्य पाप्मभ्यो य एवं वेदेति। हरिम्, श्रवणमात्रेण सर्वथा पापहारिणम्। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेत्यादि श्रुतेः। अतिपापप्रसक्तोऽपि ध्यायेन्निमिषमच्युतम्। भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः इति पराशरवचनाच्च।

भावार्थ - प्रलय की अवस्था में पृथिवी जलादि व्यक्त पदार्थ क्रमशः अव्यक्त में लीन होते हैं, अव्यक्त अक्षर रूप जीव में, जीव तमः प्रकृति वाच्य त्रिगुण साम्य प्रधान में तथा प्रधान देव पदवाच्य ब्रह्म में लीन हो जाता है ऐसा श्रुति का कथन है। अब वरेण्यम्-इस पद की व्याख्या करते हैं। वरेण्यं अर्थात् वरणीय-अतिशय सौन्दर्यमाधुर्यसौकुमार्यादि विग्रहगुणयुक्त वह ब्रह्म है उसका हम ध्यान करें। श्रीहरि के लोकोत्तर सौन्दर्य का वर्णन करती हुई गोपाङ्गनायें कहती हैं--

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायत मूर्च्छितेन सम्मोहितार्य चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगा पुलकान्यबिभ्रन् ।।

(भा० द० स्कन्ध अ० २९ श्लोक ४०)

हे प्यारे श्यामसुन्दर ! तीनों लोकों में ऐसी कौन सी स्त्री है जो मधुर मधुर पद विन्यास और आरोहावरोह क्रम से विविध प्रकार की मूर्च्छनाओं से युक्त आपकी वंशी की तान सुनकर एवं इस त्रिलोक सुन्दर मोहिनी रूप को जो अपनी एक बूँद सौन्दर्य से त्रिलोकी को सौन्दर्य का दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिण ये चराचर प्राणी भी रोमाञ्चित अर्थात् पुलकित हो जाते हैं, उसे अपने नेत्रों, कर्णों से देख सुनकर अपनी आर्यमर्यादा से विचलित न हो जाय, कुलीनता और लोकलज्जा को त्यागकर आपके प्रति अनुरक्त न हो जाय। ऐसा वरेण्य स्वरूप श्रीकृष्ण का है। अब

व्याख्याकार ''कमलेक्षणम्'' इस पद का शास्त्र प्रमाणों के साथ विश्लेषण करते हैं-भगवान् श्रीकृष्ण कमलेक्षण अर्थात् प्रफुल्ल कमलदल के समान नयन वाले हैं। मुमुक्षु साधकों पर अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से अवलोकन कर उन्हें स्वीकारते हैं। अथवा अपनी आह्लादिनी शक्ति कमला श्रीराधिका की ओर है ईक्षण-दृष्टि जिनकी ऐसे श्रीहरि का हम ध्यान करें। इसमें श्रुति का प्रमाण दर्शाते हैं-''जो यह आदित्यमण्डल के मध्य हिरण्यमय पुरुष दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जो नखशिख पर्यन्त हिरण्यकेश-हिरण्यश्मश्रुस्वरूप सबही सुवर्णमय है, तथा उनकी नयनावली जलान्तःस्थ प्रफुल्ल कमलदल तुल्य है, समस्त पापों (दोषों) से रहित देदीप्यमान रूप में उदित है, जो इस स्वरूप को इसी रूप में जानता है वह सब पापों से मुक्त होता है।'' स्मृति प्रमाण दर्शाते हैं-''हरिं श्रवणमात्रेण सर्वथा पापहारिणम्। अशेषपापनिर्मुक्तो मानवो मोक्षभाग् भवेत्।'' अर्थात् हरति पाप मिति इस व्युत्पत्ति से समस्त पापों को हरने वाले श्रीहरि के सम्बन्ध में शास्त्रों के श्रवण मात्र से महत्व के बोध हो जानने से मनुष्य कायिक वाचिक मानसिक सांसर्गिक जन्मजन्मान्तरीय पापों से मुक्त हो जाता है, अतः शुद्ध निर्मल निरञ्जन वह जीव भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष का भागी हो जाता है। ब्रह्मविद् ब्रह्म समान ही हो जाता है अतः दिव्य धाम में प्राप्त वह मुक्तात्मा सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ समस्त कामनाओं (आनन्दों) का भोग करता है-इत्यादि श्रुति वचनों से भी मुक्त जीवों की महत्ता बताई है।

''अतिपापप्रसक्तोऽपि ध्यायेन्निमिषमच्युतम्।
भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः ।''

(विष्णुपुराण)

अत्यन्त पापाचारयुक्त पुरुष निमिषादूर्धमात्र (अतिस्वल्पकाल) भी अच्युत भगवान् का ध्यान करे वह अत्यधिक तपस्वी समान स्वयं तो पावन हो जाता है, सम्पर्क में आने वाले अन्यों को भी पावन बनाता है-इस प्रकार विष्णु पुराणोक्त महर्षि पराशर के वचनों से भी श्रीहरि का ध्यान समस्त पापपुञ्जों का समूल नाश करने वाला है। अतः आचार्यपाद श्रीकृष्ण के ध्यान की विधेयता पर प्रपन्नजनों को उपदेश प्रदान करते हैं।।४।।

वामाङ्गगसहितादेवी राधावृन्दावनेश्वरीति कृष्णोपनिषद्वाक्यात् भक्तजनपरममंगलरूपं युगलस्वरूपं श्रीसनकसंप्रदायिभिः सर्वैरपि

ध्येयमित्याशयेनाहः-अङ्ग इत्यादिना।

भावार्थ - वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा देदीप्यमानरूप में श्रीकृष्ण के वामभाग में विराजित हैं अतः उन आह्लादिनी शक्ति सहित श्रीकृष्ण का अर्थात् भक्तजनों के मङ्गलदायक श्रीराधाकृष्णयुगलरूप ब्रह्म की उपासना (ध्यान-भजन) सनक सम्प्रदायानुयायी भक्तों वैष्णवजनों को करना चाहिये इस आशय से आद्याचार्य उपदेश करते हैं--

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।५।।

श्रीकृष्णस्य वामाङ्गे वयं वृषभानुजां स्मरेम इत्यन्वयः। कथंभूतां मुदा हर्षेण विराजमानां अनुरूपसौभगां श्रीकृष्णमनोविश्राम-स्थानभूतां सखीसहस्रैः रंगदेव्यादिभिः सदा परिसेवितां देवीं द्योतमानां सकलेष्टकामदाम् अभीष्टप्रदां श्रीगोपीनां रासमण्डले भगवतोऽनेक-रूपत्वं रूपं रूपं प्रति प्रतिरूपो बभूवेत्यादि श्रुतिसिद्धं बोध्यम्।

भावार्थ - पूर्वोक्त गुणस्वभावयुक्त श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में उन्हीं की अनपायिनी शक्ति वृषभानुनन्दिनी के रूप में अवतीर्ण श्रीराधिकाजी का हम स्मरण करें ऐसा समन्वित वाक्यार्थ है। जिनका स्मरण विधेय है वे कैसी हैं? ऐसी आकांक्षा पर कहते हैं ''मुदा विराजमानां'' अति हर्ष के साथ विराजमान हैं। श्रीकृष्ण के ही अनुरूप सौभाग्य स्वरूप गुण-शक्ति स्वभाव से युक्त हैं अथवा श्रीकृष्ण के मन की विश्रामस्थली है, अतः सतत स्मरणीय हैं। जो नित्य निकुञ्ज में रङ्गदेवी-सुदेवी-ललिता प्रभृति स्वाङ्गभूता सहस्रों-सहस्रों सहचरियों से सदा परिसेवित हैं। देवीम्-अर्थात् द्योतमान भासमान हैं। भक्तजनों के सर्वविध अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाली रासेश्वरी का हम सदा स्मरण करें। महारास में अनन्त गोपियों की अभिलाषाओं के अनुरूप प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अनन्तरूप प्रकट कराकर प्रतिगोपी मध्य प्रियतम का नित्य सान्निध्य कराने वाली श्रीराधा ही हैं उनका स्मरण विधेय है। इस प्रसङ्ग में श्रुति प्रमाण दर्शाते हैं- ''अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।'' जैसे एक होते हुये अग्नि भुवनोपलक्षित सकल पदार्थों में प्रविष्ट

होकर अनन्तरूप में व्यक्त होता है। उसी प्रकार एक ही परमात्मा भक्तों की इच्छा से अन्तर्बहिः रूप में अनन्त रूप से व्यक्त होता है। रासमण्डल में अनन्त गोपियों, द्वारका में अष्टोत्तरशतषोडश सहस्र पत्नियों के निमित्त कायव्यूहरूप से उतने ही स्वरूप प्रभु बन जाते हैं ।।५।।

संसारसागरं तितीर्षुभिः सर्वैरपि युगलस्वरूपमेवोपास्यमित्याह उपासनीयमित्यादिना-

भावार्थ - संसार सागर को पार करने की इच्छा वाले समस्त मुमुक्षु साधकों को उक्त श्रीराधाकृष्ण युगलस्वरूप ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए-इस आशय से श्रीनिम्बार्क भगवान् साधकों को उपदेश करते हैं--

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे ।।६ ।।

अज्ञानतमोऽनुवृत्तेः प्रहाणयेऽविद्यायाः निवृत्तये सदा पंचस्वपि कालेषु जनैः प्रेक्षावद्भिर्नितराम् अविच्छेदेन युगलस्वरूपमुपासनीयम्। इयमेव उपासना सनंदनाद्यैर्मुनिभिः श्रीनारदायोपदिष्टा। तथा च श्रुतिः, त्वं हि नः पिता योस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयति। श्रुतं ह्येवमेव भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति। सोहं भगवः शोचामि तं मां भगवान्छोकस्य पारं तारयतु तस्मै मृदितकषायाय तमसः पारं दर्शयति भगवान् सनतकुमार इत्यादि। ननु सनत्कुमारै र्नारदाय ज्ञानमुपदिष्टं नोपासनेति चेत्सत्यम्। ज्ञानं च उपासनात्मकम्। उपास्यं च सगुणं ब्रह्म इत्यविरोधः। यथा तत्त्वद्रष्टारं श्रीवेदव्यासं श्रीमन्नारद उपदिष्टवान् तथैव भगवान्सनत्कुमारोऽपि नारदमुपादिशदित्यर्थः।

भावार्थ - प्रेक्षावान् साधकजनों को अपने जन्म जन्मान्तरों से अनवरत रूप में अनुवर्तित अज्ञानरूपी अन्धकार अर्थात् कर्मात्मिका अविद्या की निवृत्ति के लिए प्रति दिवस के प्रातः पूर्वाह्न-मध्याह्न-सायाह्न रात्रि इन पांचों भागों में गङ्गा प्रवाहवत् अविच्छिन्न रूप से पूर्व निर्दिष्ट श्रीराधाकृष्ण-युगलस्वरूप ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। इस प्रकार उपासना विधेय है। इसी उपासना विधि को परमगुरु श्रीब्रह्मदेव के मानसपुत्र महर्षि सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमारों ने हमारे गुरुदेव निखिलतत्त्वद्रष्टा देवर्षि श्रीनारद को उपदेश किया है। इस विषय में छान्दोग्योपनिषद् के उस प्रकरण का

उद्धरण प्रस्तुत कियाग गया है। जिसमें महर्षि कुमारों द्वारा शरणागत नारद को भूमविद्या का उपदेश वर्णित है। जैसा कि एक बार देवर्षि नारद जिज्ञासुभाव से जनलोकपहुँच कर सनकादिकों से प्रपत्तिपूर्वक प्रश्न करते हैं-हे भगवन् आप ही हमारे पिता हैं हितैषी है जो हमको अविद्यारूप संसार सागर से पल्लीपार उतार कर भवबन्धन से छुड़ा सकते हैं। हमने आप सरीखे महापुरुषों से सुना है कि आत्मज्ञानी पुरुष ही जन्म-मरण-रूप शोकसागर को पार कर सकता है। अतः हे भगवन् ! मैं आत्मज्ञान के बिना संसारचक्र में पड़ने के भय से शोक ग्रस्त हूँ, मुझे आप इस शोकसागर से पार कराने का अनुग्रह करें। इस प्रकार नारद के विनयपूर्वक प्रपन्नभाव को जानकर परमकारुणिक भगवान् श्रीसनत्कुमारजी ने जिनका हार्दिक कल्मष दूर हो गया है ऐसे उन देवर्षि नारदको तमः पदवाच्य प्राकृतमण्डल से परे आदित्यवत् समुज्वल अप्राकृत गोलोकादिधाम और गोलोकविहारी राधाकृष्णयुगलतत्त्व का बोध कराया जो भूमा पुरुष के रूप में शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट है। उसमें नाम से लेकर प्राण पर्यन्त पंचदश प्रतीक ब्रह्म का उपेदश कर अन्त में भूमापुरुष के स्वरूपगुण महिमा का निर्देश किया ''भूमात्वेन विजिज्ञासितव्यः'' इति।

अब यहाँ पर जिज्ञासा करते हैं-कुमारों ने तो नारद को आत्मतत्त्व का ज्ञान कराया उपासना के विषय में तो नहीं कहा-क्योंकि ''नेदं यदिदमुपासते .. यद् वाचाभ्य नुदितं येनवागभ्युद्यते तद् ब्रह्म'' इत्यादि केनोपनिषद् के वचनों से उपासना का निषेध किया गया है? आपका कथन यद्यपि सत्य है तथापि उक्त जो ज्ञान है वह उपासनात्मक है उपास्य ब्रह्म तो सगुण साकार सविशेष है उसकी उपासना के लिए तो शतशः शास्त्र वचन प्रसिद्ध है अतः इस विषयमें कोई विरोध नहीं है। जैसे तत्त्वद्रष्टा श्रीवेदव्यास को नारदजी ने उपदेश किया और श्रीसनत्कुमारजी ने नारद को उपदेश किया यह सब सगुण ब्रह्म विषयक ही है, उपासना की विधेयता सिद्ध होती है।

ननु निर्विशेषब्रह्मज्ञानात्सकलभेदनिवृत्तिरविद्यानिवृत्तिरेवमोक्षस्तथाहि श्रुतिः-न पुनर्मृत्यवे तदेकं पश्यति तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनायेत्याद्या इति चेन्न तमिति सहस्रशीर्षत्वादिविशिष्टस्यैव परामर्शात्। पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति। यदापश्यः पश्यते रूक्मवर्णं कर्त्तारमीशं तदा विद्वान्पुण्य-

पापेविधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीत्यादि श्रुतिषु सगुणब्रह्मज्ञाना-देवमोक्षोक्तेः। ननु नेदं ब्रह्म यदिदमुपासनम्, इत्युपास्यत्वं प्रतिषिद्ध-मिति चेन्न। अत्र ब्रह्मणो जगद्वैरूप्य प्रतिपादनात्। यदिदं जगदुपासते-प्राणिनः नेदं ब्रह्म तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते इति वाक्यार्थः।

भावार्थ - अब फिर पूर्वपक्ष का उपस्थापन करते हैं-निर्विशेष ब्रह्म के ज्ञान से सकल भेद किंवा अविद्या की निवृत्ति हो जाती है, तथा अविद्या की निवृत्ति से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है- इसमें श्रुति प्रमाण है-''न पुनर्मृत्यवे....'' इत्यादि, अर्थात् निर्विशेष ब्रह्म के ज्ञान से मुक्ति को प्राप्त जीव फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता किंवा जन्म-मरणरूप संसार चक्र में नहीं पडता। उस अद्वितीय आनन्दस्वरूप ब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार करता हुआ तदनुभूति में निमग्न रहता है। उसी को जानकर ही मृत्यु से पार होता है, इससे अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग परं पद में प्राप्त होने का नहीं है। इत्यादि श्रुति कदम्ब से ब्रह्मज्ञान द्वारा मोक्ष बताया है, फिर आप उपासना विधि पर क्यों आग्रह करते हैं। ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि ''तमेवविदित्वा'' इसमें ''तं'' इस पद का निर्देश सहस्रशीर्षत्वादिविशिष्ट सविशेष ब्रह्म का है न कि निर्विशेष का। उपासक उपास्यदेव को अपने से पृथक् रूप में प्रेरिता मानकर उपासना करता है, निदिध्यासन करता है। तदनन्तर उसी उपासना विधि से मोक्ष को प्राप्त होता है। भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष को प्राप्त हुआ मुक्तात्मा जब भगवद्धाम में निखिलजगदभिन्ननिमित्तोपादानकारण सौन्दर्यसीमा स्वरूप रुक्मवर्ण और सर्वनियन्ता सर्वेश्वर का अपरोक्ष साक्षात्कार करता है, तब वह पुण्यपापरूपबन्धन से मुक्त हुआ निरञ्जन स्वरूप परमात्मा की समता को प्राप्त होता है। इत्यादि श्रुतिवचनों में सगुण ब्रह्म के ज्ञान और उसकी उपासना से ही मोक्ष होने की बात कही है।

अब पुनः जिज्ञासा करते हैं-''नेदं ब्रह्म यदिदमुपासते'' जिसकी उपासना की जा रही है वह ब्रह्म नहीं है-इस प्रकार उपासना का निषेध बताया गया है, ऐसा भी आप नहीं कह सकते क्योंकि इसमें जो ब्रह्म की उपासना का निषेध है वह तो छान्दोग्य प्रोक्त नाम से प्राण पर्यन्त के प्रतीक ब्रह्म चराचर जगत् का ब्रह्म से वैधर्म्य प्रतिपादन परक है, जगद्रूप ब्रह्म की

उपासना विधि का निषेध है। यह जो प्राणी जगत् की उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म तो आप उसे समझें ''यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'' के अनुसार जो वाणी द्वारा वर्णित नहीं हो सकता अपितु वाणी ही जिससे अभिव्यक्त होती है-ऐसा उक्तवाक्य का अभिप्राय है।

अविद्यानिवृत्तिः किमात्मरूपा तद्भिन्ना वा ?, न प्रथमः असाध्यत्वापत्तेः। द्वितीयेऽपि किं सत्या मृषा वा ?। यदि सत्या तर्हि अद्वैतहानिः। अतः प्रथमः कल्पो न कल्पते, द्वितीये कल्पेऽविद्यादेः सत्यत्वापत्तेः तस्मादविद्यानिवृत्तिरूपमुक्तिः अनुपपन्ना।

भावार्थ - अब यहां अविद्या निवृत्ति के विषय में विमर्श किया जाता है कि आपका अभिप्रेत अविद्या निवृत्ति का स्वरूप कैसा है? क्या वह आत्मरूप है या उससे भिन्न है? यदि अविद्या निवृत्ति को आत्मरूप मानते हीं तो उसमें साध्यत्व नहीं रहेगा, असाध्यत्व आ जायेगी। तब द्वितीय पक्ष आत्मरूप से भिन्न मानना होगा। उसमें प्रश्न उठेगा कि वह सत्य है या मिथ्या ? यदि आप अविद्या निवृत्ति को आत्मभिन्न रूप में सत्य स्वीकारते है तो ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्याजीवो ब्रह्मैव नापरः'' के अनुसार आपके अद्वैतत्व में हानि होगी इसलिये उसे सत्य नहीं मान सकते यदि अविद्या निवृत्ति को मिथ्या मानते हैं तो जगन्मिथ्या कहकर आप उसकी सत्ता ही स्वीकार नहीं करते तो निवृत्ति किसकी? निवृत्ति यदि आवश्यक है तो अविद्यादि की सत्ता माननी पड़ेगी। अतः आपका अभिप्रेत अविद्यानिवृत्तिरूप मोक्ष ही अनुपपन्न है। इत्यलम् ॥६॥

शास्त्रस्य सत्यत्वप्रतिपादनाय सर्वविज्ञानस्ययथार्थत्वमाह सर्वमित्यादिना-

भावार्थ - आचार्यपाद श्रुतिस्मृत्यादि शास्त्र की सत्यता का प्रतिपादन करने के लिए सर्वविज्ञान की यथार्थता का निरूपण करते हैं सप्तम पद्य ''सर्वं हि विज्ञानम्'' इत्यादि से-

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादितिवेदविन्मतं त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता ॥७॥

हि (यस्मात्) निखिलस्यवस्तुनः श्रुतिस्मृतिभ्यो ब्रह्मात्मकत्वात् अतः सर्वं विज्ञानं यथार्थकमित्यन्वयः। यतस्त्रिरूपता श्रुति-

सूत्रसाधिता तस्मात् सापि यथार्था-इति अपि शब्दार्थः। उक्तार्थे प्रमाणमाह ''इतिवेदविन्मतम्'' वेदविदामौपनिषदानां सनकादिकनारदव्यासमन्वादीनां मतं निर्णीतोऽर्थः सिद्धान्त इत्यर्थः। तत्र निखिलशब्दः क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-प्रकृतिपुरुषक्षराक्षरादिशब्दाभिधेय चेतनाचेतनपदार्थोपस्थापकः। वस्तुशब्दस्तस्य मिथ्यात्वनिरसनपरः। ''नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानाम्'' ''गौरनाद्यन्तवतीत्यादिश्रुतेः।'' ''प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यानादी उभावपि'' ''अश्वत्थं प्राहुरव्ययम्'' इत्यादि स्मृतेः, ''आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयान्ति चेति सूत्राच्च। इत्थं श्रुतिस्मृतिसूत्रादिभ्यो सर्वस्य चेतनाचेतनस्य ब्रह्मात्मकत्वात् कारणात् सर्वं विज्ञानं यथार्थकमिति वाक्यार्थः।''

भावार्थ - जिस हेतु से जडचेतनात्मक समस्त जगत् को कारणभिन्न कार्यरूप प्रवाहमय नित्य वस्तु के रूप में निर्दिष्ट किया है अतएव यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मात्मक होने से यथार्थ है शाश्वत् है, ऐसा श्रुति स्मृति सूत्रतन्त्रादिसमस्त शास्त्र प्रमाणों से सिद्ध है। जब भोक्ता भोग्य प्रेरिता के रूप में प्रधानक्षेत्रज्ञपति के रूप में उन्हीं निगमागम सूत्रादि शास्त्रों के वचनों से त्रिरूपता सिद्ध की गई है। तब चिदचिदीश्वररूप त्रिरूपता स्वतः सिद्ध है यही यहाँ अपिशब्द का तात्पर्य है। उपर्युक्त विषय में प्रमाण बतलाते हैं-''इति वेदविन्मतम्'' अर्थात् वेदवेत्ता सनकादिक-नारद-व्यास-मनु प्रभृति भगवद्विभूति औपनिषद आचार्यों का मत-निर्णीत अर्थ यानि सिद्धान्त है। पूर्वोक्त वाक्यों में निखिल शब्द क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-क्षराक्षर-प्रकृति पुरुष-अचिच्चिदादि शब्दाभिधेय जडचेतन पदार्थ का उपस्थापक-परिचायक (बोधक) है। वस्तु शब्द जगत् के मिथ्यात्व निराकरण हेतु प्रयुक्त है। अनन्त नित्यचैतन्य जीवों की सकल कामनाओं को अकेले नित्य चैतन्य परमात्मा पूर्ण करता है। प्रकृति आद्यन्तरहित शुक्लादिवर्णात्मिका श्रीहरि की नित्य शक्ति है इत्यादि श्रुतियों से और ''प्रकृति पुरुष दोनों अनादि हैं ऐसा समझना चाहिए'' ''इस संसार को अविनाशी अश्वत्थवृक्ष कहा गया है'' इत्यादि स्मृतियों से आत्मज्ञानी पुरुष जिस रूप में परमात्मा को स्वयं समझते ग्रहण करते उसी रूप में शिष्यों को भी ग्रहण कराते ज्ञान कराते हैं, जैसे परमात्मा अंशरूप मेरे अंशी हैं वैसे मैं तदभिन्नस्थिति प्रवृत्तिक हूँ स्वतन्त्र नहीं किन्तु परमात्मा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं,

इत्यादि सूत्रों से, इस प्रकार श्रुतिस्मृतिसूत्र प्रमाणों द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् का ब्रह्मात्मकत्व होने से सब विज्ञान यथार्थ (सत्य) है ऐसा वाक्यार्थ है।

किञ्च भोक्तृभोग्यनियन्तृरूपा त्रिरूपताऽपि यथार्थैव। तत्र हेतुः श्रुतिसूत्रसाधितेति निर्णयासाधारणभूतैः श्रुतिसूत्रैः निर्णीतोर्थः। एवं त्रैरूपत्वश्रवणस्मरणाभ्यां स्वरूपेणभिन्नत्वात्, ब्रह्मात्मकत्व तदायत्तस्थितिप्रवृत्तिकत्व-तद्व्याप्यत्वादिभ्यो हेतुभ्यो अभिन्नत्वाच्च ब्रह्मभिन्नाभिन्नत्वं चेतनाचेतनात्मकं विश्वमिति वेद विदां सनत्कुमार-नारद-व्यास-मन्वादीनां मतं सिद्धान्त इति। सदेव सौम्येदमग्रआसीदे-कमेवाऽ द्वितीयम्, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्मेत्यादिश्रुतिभ्यः, अधिकं तु भेद निर्देशात् भेदव्यपदेशाच्चान्यः, उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत्, प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वादित्यादि सूत्रेभ्यश्च चिदचिदीश्वराणां परस्पर वैलक्षण्यसाधर्म्यवैधर्म्यादिहेतुत्वात् स्वाभाविकभेदाभेदत्वं सिद्धम्।

भावार्थ - फिर आगे बतलाते हैं-भोक्ता-भोग्य-नियन्ता के भेद से त्रिरूपता भी यथार्थ (सत्य) है। यहां अपि शब्द का अभिप्राय उक्त तीनों पदार्थों की सत्यता का सुदृढीकरण है। उसमें हेतु है ''श्रुतिसूत्रसाधिता अर्थात् निर्णय में असाधारण स्वरूप श्रुति एवं सूत्रों द्वारा निर्णीत ऐसा अर्थ है। इस प्रकार त्रिरूपता के श्रवण से स्वरूप से भिन्न और ब्रह्मात्मकत्व तदधीनस्थितिप्रवृत्तिकत्व तद्व्याप्यत्वादि हेतुओं से अभिन्न भी है। अतः यह चेतनाचेतनात्मक विश्व स्वाभाविक रूप से ब्रह्म भिन्नाभिन्न है ऐसा वेदवेत्ता सनत्कुमार नारद-व्यास-मनु प्रभृति आचार्यों का सिद्धान्त है। ''हे सौम्य ! यह जगत् सृष्टि के आदि में अव्यक्तरूप से ब्रह्म में विद्यमान था'' ''वह ब्रह्म एक ही अद्वितीय भाव से स्थित है'' ''वह तुम ही हो'' ''यह आत्मा ब्रह्म ही है'' इत्यादि श्रुति वचनों से, ''श्रुतियों में अधिक रूप से भेद का निर्देश होने से'' ''भेद का मुख्य व्यवहार होने से जीव ब्रह्म से भिन्न है'' ''सर्प-कुण्डल की तरह श्रुतियों के भेद और अभेदपरक उभयविध वचनों का मुख्य व्यवहार स्वीकार करने से'' ''सूर्य और प्रकाश की तरह आधार-आधेय दोनों तेजः स्वरूप होने के कारण ब्रह्म और अचेतन प्रपञ्च में'' ब्रह्म और चेतन रूप जीव में स्वाभाविक रूप से परस्पर विलक्षणता, साधर्म्य-

वैधर्म्य आदि हेतुओं से स्वाभाविक भेदाभेदत्व किंवा स्वाभाविक द्वैताद्वैतत्व सिद्ध होता है।

सत्ता निरूपण--

सत्ता द्विविधा स्वतन्त्रपरतन्त्रभेदात्। तत्र स्वतन्त्रसत्ता परब्रह्म निष्ठा, सा चात्माश्रितत्वे सति स्वायत्तस्थितिप्रवृत्ति-रूपा । ''एतदक्ष-रस्य प्रशासने गार्गि सूर्या चन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः'' ''आत्मा हि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः एष सर्वेश्वरः'' ''स एव सर्वाधिपतिः स कारणं कारणाधिपाधिपः'' इत्यादि श्रुतिभ्यः। ''सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च।'' ''शास्ता विष्णुः शेषस्येत्यादि स्मृति-भ्यश्च स्वतन्त्रसत्ताश्रयो निरस्त साम्यातिशयो विश्वात्मा परब्रह्म भगवान् पुरुषोत्तम एव। परतन्त्रसत्ता च परायत्तस्थितिप्रवृत्तिरूपा। सा चेतनेजीवात्मनि, अचेतनेप्राकृतकालादौःस्थिता।'' 'यदासीत्तदधीन-मासीत्' 'जीवोऽल्पशक्तिरस्वतन्त्रोऽवरः' इति श्रुतेः 'मत्तः सर्वं प्रवर्तते' '' सत्त्वं स्वातन्त्र्यमुद्दिष्टं तच्च कृष्णे न चापरे। अस्वात्न्त्र्यात्तदन्येषाम-सत्त्वंविद्धि भारत'' इत्यादि स्मृतेश्च परतन्त्र सत्वं नियम्यवर्गवृत्ति। तच्च द्विविधं कूटस्थं विकारशीलश्चेति। कूटस्थत्वं जन्मादिविकार-शून्यत्वेसति नित्यत्वम्। तद्‌िध अक्षर-पुरुष-क्षेत्रज्ञादिपदवाच्ये जीवात्मनि विद्यते। ''अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते'' ''जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः'' ''अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे'' इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः प्रमाणेभ्यः। द्वितीयश्च विकारशीलत्वे सति अनाद्यन्तत्वम्, तत्तु प्रकृतिवर्गाश्रितम्, तदाश्रयश्च कार्यकारणात्मकं प्रधानमायाप्रकृतिपदवाच्यम् जगदिति। गौरना-द्यन्तवती जनित्री भूतभाविनी सिताऽसिता च रक्ता च सर्वकामदुधा-विभोरितिश्रुतेः ''त्रिगुणं हि जगद्योनिरनादि प्रभवाप्ययम्। अचेतना परार्था च नित्या सतत विक्रिया इत्यादि स्मृतेश्च। एवं च स्वतन्त्रसत्त्व-विषयिकाऽभेदवाक्यवृत्तिः तस्यैक्यात्तयैव तेषां नैराकाङ्क्ष्यम्। तथैव भेदनिषेधपराणामपि चेतनाचेतनवस्तु-वृत्तिस्वतन्त्रसत्वनिषेधपरत्वेन तेषां स्वार्थे एव प्रामाण्यात्। भेद वाक्यानां तु स्वतन्त्रसत्त्वविषयकत्वेनैव स्वार्थविधायकत्वात् सर्वं समञ्जसम् ।

निम्बार्क दर्शन परम्परा में--

भावार्थ - स्वतन्त्र-परतन्त्र भेद से सत्ता दो प्रकार की मानी गयी है। अपने आश्रित होकर जिसकी स्थिति प्रवृत्ति अपने अधीन हो उसको स्वतन्त्रसत्ता कहते हैं। स्वतन्त्रसत्ता विश्वात्मा परब्रह्म में रहती है। उक्तार्थ का श्रुति स्मृति प्रमाणों से समर्थन करते हैं--

वृहदारण्यक का वचन है महर्षि याज्ञवल्क्य परम विदुषी गार्गी से कहते हैं-''हे गार्गि अक्षर पदवाच्य उस विश्वात्मा परमात्मा की आज्ञा का पालन सारा विश्व करता है। अतः सूर्य चन्द्रमा उसकी आज्ञा को पूर्ण रूप से धारण करते हैं'' ''परमात्मा परम स्वतन्त्र है, सब गुणों का आधार है सब विश्व का ईश्वर-नियन्ता है, वह श्रीहरि सबका स्वामी है। वही सबका अधिपति, जगत् के कारण इन्द्रियों के अधिष्ठाता जो देवता हैं उनके भी स्वामी, उत्पादक श्रीहरि हैं, इत्यादि श्रुति प्रमाणों से तथा सब प्राणीमात्र के हृदय में मैं विराजमान हूँ, मेरे से ही जीवों को अनुभूत अर्थ का यथार्थज्ञान-अनुभव होता है'' समस्त विश्व का शासनकर्ता परमात्मा है, इत्यादि स्मृति प्रमाणों से स्वतन्त्र सत्ताश्रय साम्यातिशयरहित, विश्वात्मा परब्रह्म भगवान् पुरुषोत्तम श्रीहरि ही हैं।

अब परतन्त्र सत्ता का स्वरूप लक्षण दर्शाते हैं-''जिसकी स्थिति प्रवृत्ति पर अर्थात् दूसरे के अधीन हो वह परतन्त्रसत्ता है ऐसी सत्ता चेतन स्वरूप जीवात्मा में और अचेतन स्वरूप प्राकृतकाल आदि में अवस्थित है। अतः जडचेतनात्मक जगत् परतन्त्र सत्ताश्रय है। इसमें सृष्टि से पूर्व सूक्ष्म अव्यक्त रूप में जो यह जगत् विद्यमान था तब भी उस परमात्मा के ही अधीन था।''

''जीव की शक्ति अल्प है, वह स्वतन्त्र नहीं है, जीव भगवान् से निकृष्ट है'' इत्यादि श्रुति तथा ''मुझ सर्वेश्वर से ही इस जगत् की प्रवृत्ति है, स्वतन्त्र सत्ता सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्ण में ही रहती है, अन्यत्र नहीं, समस्त विश्व परतन्त्रसत्ता के आश्रित है'' इत्यादि स्मृति प्रमाण हैं।

परतन्त्र सत्ता दो भागों में विभक्त है, एक तो कूटस्थ दूसरी विकारशील। जन्म वृद्धिक्षयादि विकारों से रहित जो नित्य हो उसे कूटस्थ सत्ता कहते हैं। वह जीव में रहती है। जीव के प्रत्यक्, अक्षर, पुरुष, क्षेत्रज्ञ

इत्यादि पर्याय हैं। वह जन्मादि षड् विकारों से रहित और नित्य है। इसको ''अजो ह्येकः'' इत्यादि श्रुति वाक्यों से प्रमाणित करते हैं। ''अजः अर्थात् उत्पत्ति विनाश रहित जीव अहं बुद्धि से विषयों का सेवन करता हुआ शश्वत् माया में अवस्थित है।'' पुरुष पदवाच्य बद्धजीव माया के भोगों को भोग रहा है परन्तु अन्य मुक्तात्मा या मुक्त पुरुष माया का परित्याग करता है। ''जीवात्मा पूर्वकाल (शरीरोत्पन्न) में उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह पहले भी विद्यमान है उत्तरकाल (शरीरान्त) में भी विद्यमान है अतः नष्ट नहीं होता। जीव नित्य है पुरातन होते हुये भी नूतन है, शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता इत्यादि।''

अब विकारशील सत्ता का स्वरूपलक्षण बताते हुये कहते हैं द्वितीयम् इत्यादि। अर्थात् विकारशील होकर भी आद्यन्तरहित सत्ता को विकारी सत्ता कहते हैं। इस सत्ता का आधार प्रकृति वर्ग है वह कार्य कारणात्मक जगत् प्रधान-माया-प्रकृति प्रभृति पदवाच्य है। उक्तार्थ में श्रुति प्रमाण दर्शाते है ''गौरनाद्यन्तेत्यादि-अर्थात् गो नाम माया आदि-अन्त रहित है, नित्य है समष्टि-व्यष्टि रूप सृष्टि का कारण है सत्त्वरजस्तमः ये तीन गुण माया के हैं वह माया परमात्मा के अधीन कामधेनु गौ स्वरूपा है॥'' इत्यादि श्रुति और ''माया त्रिगुणात्मक है जगत् का कारण है, जन्म और नाश से रहित है वह अचेतन और परार्थ है तथा सदा विकारशील परिणामी है। इत्यादि स्मृति प्रमाण प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार स्वतन्त्र सत्ता परतन्त्रसत्ता के स्वरूप लक्षणों का विवेचन कर श्रुतिसमन्वय बताते हैं-अभेद प्रतिपादक-भेद प्रतिपादक और भेद निषेध प्रतिपादक के भेद से श्रुति वचन तीन प्रकार के हैं। इन तीनों वचनों की व्यवस्था इस प्रकार है कि अभेद प्रतिपादक श्रुति वचन परब्रह्म की स्वतन्त्रसत्ता का निरूपण करते हैं। भेद प्रतिपादक वचन परतन्त्र सत्ता विषयक हैं एवं चेतन तथा अचेतनरूप विश्व की स्वतन्त्रसत्ता नहीं है इस बात का निरूपण भेद निषेध प्रतिपादक वचन करते हैं। परब्रह्म चेतनाचेतनात्मक जगत् से विलक्षण है। यह नेति नेति श्रुति का विषय है। इस प्रकार समस्त श्रुति वचन भेदाभेद समन्वित स्वार्थ में प्रमाण हैं। अतः किसी प्रकार का विरोध नहीं है ॥७॥

एवं प्रथमद्वितीयश्लोकद्वयेन जीवस्यस्वरूपलक्षणभेदाः निरू-

पिताः, तृतीयेनाचिद्वर्गो व्याख्यातः, चतुर्थपञ्चमश्लोकद्वयेन स्वरूप-गुणशक्त्यादिभिः सह ब्रह्मतत्त्वं निपुणं विवेचितम्। षष्ठपद्येनोपासना-विधिः परम्परा च निर्दिष्टा, सप्तमेन भेदाभेदवाक्यानां समन्वयो दर्शितः। अथ कर्मविद्याभक्तिप्रपत्तिरूपाणि साधनानि निरूपयिष्यन्नाचार्य-स्तत्रादौ प्रपत्तिस्वरूपमाह--

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात् सन्दृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥८॥

कृष्णपदारविन्दात् अन्या गतिः (जीवानाम्) न सन्दृश्यते इत्यन्वयः।

अत्र गतिशब्दः प्रपत्तिपरः (शरणागतिपरः) स च गम्यते प्राप्यतेऽनयेति करणव्युत्पत्त्या साधनरूपः, गम्यते प्राप्यतेऽसा-वितिकर्मव्युत्पत्या साध्यरूपः। कृष्णपदारविन्दात् इत्यत्र राहोः शिर इतिवदवयवावयविनोरभेदेन कृष्णात् इति ज्ञायते। तेन जीवानामुपायो-पेयरूपात् कृष्णात्परादन्या गति क्वापि न सन्दृश्यते इति फलितोर्थः। ''यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।'' ''सर्वस्य शरणं सुहृद्'' इत्यादि श्रुतेः, ''शरणं त्वां प्रपन्ना ये ध्यानयोगविवर्जिताः। तेऽपि मृत्युमतिक्रम्य यान्ति विष्णोः परं पदम्।'' ''तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।'' ''सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'' इत्यादि स्मृतेश्च माया सन्तरणाय शरणागतिसाधनं परमोत्कृष्टमिति।

भावार्थ - इस प्रकार ज्ञानस्वरूपञ्च, अनादिमायापरियुक्तरूपम्, इन प्रथम द्वितीय श्लोकों द्वारा जीवों के स्वरूप लक्षण भेदों का निरूपण किया गया। अप्राकृतमित्यादि तृतीय पद्य द्वारा प्राकृत-अप्राकृत-कालरूप त्रिविध अचिद् वर्ग का विश्लेषण किया गया। स्वभावतोपास्त समस्तदोषम् अङ्गे तु वामे -इत्यादि चतुर्थ पञ्चम पद्यों में स्वरूपगुण शक्ति आदि के साथ श्रीकृष्णाख्य ब्रह्मतत्व का सम्यक् रूप से विवेचन किया गया। उपासनीयम्-इस छठे पद्य में उपासना विधि एवं परम्परा का निर्देश हुआ है। सर्वं हि विज्ञानम्-इस सातवें श्लोक से भेद बोधक तथा अभेद बोधक श्रुतियों का समन्वय किया गया और शास्त्र प्रमाणों से चिदचिदीश्वर तत्त्वों की यथार्थता

का समर्थन किया गया है। अब कर्मविद्यादि साधनों का निरूपण करते हुए आचार्यपाद पहले इस अष्टम पद्य से प्रपत्ति का स्वरूप बतला रहे हैं। नान्यागतिः इत्यादि ''कृष्णपदारविन्दात् अन्या गतिः (जीवानां) न सन्दृश्यते'' ऐसा प्रथम चरण का अन्वय है। अन्य चरणों की शब्दावली ''कृष्णपादारविन्दात्'' के विशेषण हैं। यहाँ पर गति शब्द प्रपत्ति अर्थात् शरणागतिपरक है ''गम्यते (प्राप्यते) अनया'' इस करण व्युत्पत्ति में, ''गम्यते असौ इस कर्म व्युत्पत्ति में, गम् धातु से क्तिन् प्रत्यय करने और मकार के लोप करने पर गति शब्द निष्पन्न हुआ, अतः गति शब्द साधन साध्य अर्थात् उपाय-उपेय द्विविध प्रसिद्ध है। ''कृष्णपदारविन्दात् इसमें ''राहोः शिरः'' राहु का शिर अर्थात् राहु इसके समान अवयव-अवयवी में अभेद की विवक्षा से कृष्णात्-कृष्ण से ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

अतएव जीवों के लिए उपायोपेय स्वरूप सर्वेश्वर सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण से अतिरिक्त अन्य कोई गति (प्रापक-प्राप्य) नहीं है ऐसा निष्कर्ष फलितार्थ समझना चाहिये।

इसमें प्रमाण दर्शाते हैं-''जो परमात्मा सृष्टि के आदि में लोकस्रष्टा ब्रह्मदेव को प्रकट करते हैं और उनको ज्ञान पुञ्ज समस्त वेद राशि का उपदेश करते हैं, आत्मा और बुद्धि के प्रकाशक उन्हीं तेजोंमय श्रीहरि का मैं मुमुक्षुभाव से शरण ग्रहण करता हूँ।'' ''वे सबके शरण (गति) तथा सबके हितैषी हैं'' इत्यादि श्रुतियों से एवं ''हे प्रभो ! जो मनुष्य ध्यान योग से वर्जित हैं वे भी यदि आपके शरणापन्न हो जाते हैं तो इस जन्म-जरा-मृत्यु से ग्रस्त लोक का अतिक्रमण कर आपके पुनरावृत्ति रहित वैकुण्ठादि दिव्य परम पद को प्राप्त होते हैं।'' हे अर्जुन ! सर्वात्मभाव से उन्हीं जगदीश्वर की शरण में जाओं, ''समस्त लोक धर्मों अर्थात् धर्मफल की आशाओं को त्याग कर मेरी शरण में आ जा मैं तुझे समस्त पाप-तापों से मुक्त करूँगा शोक मत कर'' इत्यादि स्मृतियों से सांसारिक माया बन्धन से मुक्त होकर भगवद् भाव को प्राप्त करने के लिए शरणागति साधन ही परम उत्कृष्ट है यह सिद्ध हुआ।

क्रमप्राप्तः भक्तियोगस्तु निरन्तरेऽग्रिमे पद्ये दर्शयिष्यते। ज्ञानयोगस्य (विद्यायाः) संकेतः ''सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं

पिताः, तृतीयेनाचिद्वर्गो व्याख्यातः, चतुर्थपञ्चमश्लोकद्वयेन स्वरूप-गुणशक्त्यादिभिः सह ब्रह्मतत्त्वं निपुणं विवेचितम्। षष्ठपद्येनोपासना-विधिः परम्परा च निर्दिष्टा, सप्तमेन भेदाभेदवाक्यानां समन्वयो दर्शितः। अथ कर्मविद्याभक्तिप्रपत्तिरूपाणि साधनानि निरूपयिष्यन्नाचार्य-स्तत्रादौ प्रपत्तिस्वरूपमाह--

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात् सन्दृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥८॥

कृष्णपदारविन्दात् अन्या गतिः (जीवानाम्) न सन्दृश्यते इत्यन्वयः।

अत्र गतिशब्दः प्रपत्तिपरः (शरणागतिपरः) स च गम्यते प्राप्यतेऽनयेति करणव्युत्पत्त्या साधनरूपः, गम्यते प्राप्यतेऽसा-वितिकर्मव्युत्पत्या साध्यरूपः। कृष्णपदारविन्दात् इत्यत्र राहोः शिर इतिवदवयवावयविनोरभेदेन कृष्णात् इति ज्ञायते। तेन जीवानामुपायो-पेयरूपात् कृष्णात्परादन्या गति क्वापि न सन्दृश्यते इति फलितोर्थः। "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।" "सर्वस्य शरणं सुहृद्" इत्यादि श्रुतेः, "शरणं त्वां प्रपन्ना ये ध्यानयोगविवर्जिताः। तेऽपि मृत्युमतिक्रम्य यान्ति विष्णोः परं पदम्।" "तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।" "सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" इत्यादि स्मृतेश्च माया सन्तरणाय शरणागतिसाधनं परमोत्कृष्टमिति।

भावार्थ - इस प्रकार ज्ञानस्वरूपञ्च, अनादिमायापरियुक्तरूपम्, इन प्रथम द्वितीय श्लोकों द्वारा जीवों के स्वरूप लक्षण भेदों का निरूपण किया गया। अप्राकृतमित्यादि तृतीय पद्य द्वारा प्राकृत-अप्राकृत-कालरूप त्रिविध अचिद् वर्ग का विश्लेषण किया गया। स्वभावतोपास्त समस्तदोषम् अङ्गे तु वामे -इत्यादि चतुर्थ पञ्चम पद्यों में स्वरूपगुण शक्ति आदि के साथ श्रीकृष्णाख्य ब्रह्मतत्व का सम्यक् रूप से विवेचन किया गया। उपासनीयम्-इस छठे पद्य में उपासना विधि एवं परम्परा का निर्देश हुआ है। सर्वं हि विज्ञानम्-इस सातवें श्लोक से भेद बोधक तथा अभेद बोधक श्रुतियों का समन्वय किया गया और शास्त्र प्रमाणों से चिदचिदीश्वर तत्त्वों की यथार्थता

का समर्थन किया गया है। अब कर्मविद्यादि साधनों का निरूपण करते हुए आचार्यपाद पहले इस अष्टम पद्य से प्रपत्ति का स्वरूप बतला रहे हैं। नान्यागतिः इत्यादि ''कृष्णपदारविन्दात् अन्या गतिः (जीवानां) न सन्दृश्यते'' ऐसा प्रथम चरण का अन्वय है। अन्य चरणों की शब्दावली ''कृष्णपादारविन्दात्'' के विशेषण हैं। यहाँ पर गति शब्द प्रपत्ति अर्थात् शरणागतिपरक है ''गम्यते (प्राप्यते) अनया'' इस करण व्युत्पत्ति में, ''गम्यते असौ इस कर्म व्युत्पत्ति में, गम् धातु से क्तिन् प्रत्यय करने और मकार के लोप करने पर गति शब्द निष्पन्न हुआ, अतः गति शब्द साधन साध्य अर्थात् उपाय-उपेय द्विविध प्रसिद्ध है। ''कृष्णपदारविन्दात् इसमें ''राहोः शिरः'' राहु का शिर अर्थात् राहु इसके समान अवयव-अवयवी में अभेद की विवक्षा से कृष्णात्-कृष्ण से ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

अतएव जीवों के लिए उपायोपेय स्वरूप सर्वेश्वर सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण से अतिरिक्त अन्य कोई गति (प्रापक-प्राप्य) नहीं है ऐसा निष्कर्ष फलितार्थ समझना चाहिये।

इसमें प्रमाण दर्शाते हैं-''जो परमात्मा सृष्टि के आदि में लोकस्रष्टा ब्रह्मदेव को प्रकट करते हैं और उनको ज्ञान पुञ्ज समस्त वेद राशि का उपदेश करते हैं, आत्मा और बुद्धि के प्रकाशक उन्हीं तेजोंमय श्रीहरि का मैं मुमुक्षुभाव से शरण ग्रहण करता हूँ।'' ''वे सबके शरण (गति) तथा सबके हितैषी हैं'' इत्यादि श्रुतियों से एवं ''हे प्रभो ! जो मनुष्य ध्यान योग से वर्जित हैं वे भी यदि आपके शरणापन्न हो जाते हैं तो इस जन्म-जरा-मृत्यु से ग्रस्त लोक का अतिक्रमण कर आपके पुनरावृत्ति रहित वैकुण्ठादि दिव्य परम पद को प्राप्त होते हैं।'' हे अर्जुन ! सर्वात्मभाव से उन्हीं जगदीश्वर की शरण में जाओं, ''समस्त लोक धर्मों अर्थात् धर्मफल की आशाओं को त्याग कर मेरी शरण में आ जा मैं तुझे समस्त पाप-तापों से मुक्त करूँगा शोक मत कर'' इत्यादि स्मृतियों से सांसारिक माया बन्धन से मुक्त होकर भगवद् भाव को प्राप्त करने के लिए शरणागति साधन ही परम उत्कृष्ट है यह सिद्ध हुआ।

क्रमप्राप्तः भक्तियोगस्तु निरन्तरेऽग्रिमे पद्ये दर्शयिष्यते। ज्ञानयोगस्य (विद्यायाः) संकेतः ''सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं

श्रीनारदायाखिलतत्व साक्षिणे'' इत्यादिना छान्दोग्योपनिषदः भूमविद्याप्रकरणे सनत्कुमार-नारद सम्वादरूपेण विहितः। विवेचितं च निपुणं पूर्वाचार्यपादैर्वेदान्तरत्नमञ्जूषायाम्। कर्मयोगस्तावत्त्रिविधः नित्य-नैमित्तिककाम्यभेदत्। तत्र अहरहः सन्ध्यामुपासीत इत्यादिना विहितमवश्यकर्तव्यमकरणेदोषावहं नित्यकर्मेति कथ्यते। नैमित्तिकं च जन्मोत्सवोपनयनविवाह श्राद्धादि बहुविधम्। काम्यं पुनः ''स्वर्गकामोयजेत'' ''पुत्रकामो यजेत'' इत्यादि शास्त्रोक्त रीत्या पुण्यलोकेप्सुना धन-पुत्र-कलत्रादिकामनया लोकेसुखेप्सुना क्रियमाणं नानाविधयज्ञानुष्ठान-व्रतजपादिकं निर्दिष्टम्। काम्य कर्मणोनिषिद्ध-कर्मवत् त्याज्यत्वेन परिहर्तव्येऽपि भगवदाराधनाबुद्ध्या क्रियमाणं सकलं कर्म श्रेयः साधनरूपं भवति। बुद्धीन्द्रियमनोदेहव्यापारैः सम्पादितं कर्म यदि ''नारायणायेति समर्पयेत्तत्'' इत्युक्तरीत्या भगवदर्पणं क्रियते तर्हि तद्बन्धन कारणं न भविष्यतीत्यतः कर्मयोग-स्यापि श्रेयः साधनत्वेन निरूपितं नारदपञ्चरात्रादौ। ''अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते'' इति श्रुतेः अविद्यासंज्ञक कर्मयोगसम्पादनं विना संन्सारनिवृत्तिर्न स्यादिति।

भावार्थ - क्रमप्राप्त भक्तियोग के स्वरूप भेद तो नवम पद्य में दिखायेंगे। ज्ञानयोग अर्थात् विद्या का संकेत छठे पद्य के सनन्दनाद्यैः इत्यादि परम्परा निर्देश में किया। इसकी व्याख्या में छान्दोग्य उपनिषद् के भूमविद्या प्रकरण में सनत्कुमार-नारद के सम्वादरूप से विद्या का विवरण प्रस्तुत किया। पूर्वाचार्यवर्य श्रीमत्पुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज श्रीमद्हरिव्यासदेवाचार्य जी महाराज ने स्वरचित वेदान्तरत्नमञ्जूषा तथा सिद्धान्तरत्नाञ्जलि में इसका विस्तृत विवेचन किया है।

नित्य नैमित्तिक काम्य के भेद से कर्मयोग तीन प्रकार का है। उसमें ''अहरहः सन्ध्यामुपासीत'' प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिए इत्यादि श्रुति वाक्यों से विहित अवश्य कर्तव्य और न करने पर दोषावह कर्म नित्यकर्म कहलाता है। जन्मोत्सव-उपनयन-विवाह-श्राद्धादि के निमित्त से किये जाने वाले विविध कर्म नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं। ''स्वर्गकामो यजेत'' ''पुत्रकामो यजेत'' इत्यादि विधि वाक्यों के बल से शास्त्र रीति

द्वारा स्वर्गादि पुण्यलोकों की प्राप्ति हेतु तथा धन-पुत्र-कलत्रादिकों की कामना से लौकिक सुख प्राप्ति की इच्छा से किये जाने वाले नानाविध यज्ञानुष्ठान व्रत-जप-दानादि कर्म काम्य कर्म कोटि में आतें हैं। यद्यपि मुमुक्षुजनों के लिए काम्यकर्म निषिद्ध कर्म की भाँति त्याज्य होने से परिहरणीय होते हैं तथापि भगवदाराधना बुद्धि से किये जाने वाले समस्त कर्म यदि भगवान् श्रीनारायण प्रभु को समर्पण किये जायें तो वह कर्मपुञ्ज सन्सार बन्धन का कारण नहीं होगा अतः कर्मयोग को भी नारदपञ्चरात्र प्रभृति आगम शास्त्रों में श्रेयः साधन के रूप में निरूपित किया गया है। ''अविद्या से मृत्यु को पार कर विद्या से अमृतत्व प्राप्त कर लेता है'' इत्यादि श्रुति प्रमाणों से अविद्या संज्ञक कर्मयोग के सम्पादन बिना संसार से निवृत्ति नहीं होगी ऐसा समझना चाहिए ।

प्रसङ्गात् ''कृष्णपादारविन्दात्'' इत्यस्य विशेषणरूपेण प्रयुक्तानां ब्रह्मशिवादि वन्दितात्, भक्तेच्छयोपात्त-सुचिन्त्यविग्रहात्, अचिन्त्यशक्तेः अविचिन्त्यसाशयात्-इति चतुर्णांपदानां विवरणं प्रस्तूयते। तथा हि ब्रह्म च शिवश्चेति ब्रह्मशिवौ, तौ आदी येषां ते ब्रह्मशिवादयः, तैर्वन्दितात्। ब्रह्मशिवादयः प्राप्तैश्वर्या अपि देवेश्वरा यस्य सदा वन्दनं कुर्वन्ति तस्मात्सर्वेश्वरात् श्रीकृष्णादन्या गतिर्लोकानां नास्तीति सर्वान्वयः । भक्तानामिच्छया पूर्वजन्मनि कृततपसां वसुदेवकीनन्दयशोदादीनां भक्तानां इच्छया हरिणा वरं ब्रूत इत्युक्ते त्वमस्माकं पुत्रो भूत्वा बाललीलां कुरु एवं विधयेच्छया, उपात्तसुचिन्त्यविग्रहो येन स तस्मात्। अचिन्त्यशक्तेरिति, ''परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति श्रुतिः।'' अविचिन्त्यसाशयादिति-आशयेन सह वर्तमानं साशयं चेष्टितं अविचिन्त्यं ब्रह्मादिभिरप्यविदितं चेष्टितं यस्य तस्मात्। यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेति श्रुतेः। एवं विधमहिमशालिनः कृष्णात् अन्या गतिर्न विद्यते इत्याशयः॥८॥

भावार्थ - प्रसङ्गानुसार ''कृष्णपदारविन्दात्'' इस विशेष्य पद के विशेषण रूप में प्रयुक्त ब्रह्मशिवादिवन्दितात् इत्यादि चार पदों का विवरण प्रस्तुत करते हैं-ब्रह्मा और शिव है आदि में जिनके उन देवेश्वरों द्वारा वन्दित

चरण कमल वाले लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण से अर्थात् प्राप्तैश्वर्य ब्रह्मशिवमहेन्द्रादि देवेश्वर भी जिनकी सदा वन्दना करते हैं, उन सच्चिदानन्द सर्वेश्वर श्रीकृष्ण से अतिरिक्त परमश्रेयः स्वरूप मुक्ति प्रदान करने वाला अन्य कोई नहीं है, ऐसा इस विशेषण पद का समन्वित अर्थ है। क्योंकि भूभार हरण हेतु अवतार ग्रहण करने की प्रार्थना, गर्भस्तुति, जन्म समय में हर्षोल्लास पूर्वक पुष्पवर्षण-अभिवन्दन, शिव द्वारा बालस्वरूपदर्शन, ब्रह्मदेव द्वारा वत्सहरण प्रसङ्ग में स्तुति वन्दना, देवराज इन्द्र द्वारा गोवर्धन धारणानन्तर क्षमा याचनापूर्वक स्तुति वन्दना इत्यादि परम प्रसिद्ध हैं। द्वितीय विशेषण पद का भाव है-भक्तों की इच्छा से अर्थात् पूर्व जन्म में कठोर तपस्या करके जिन्होंने साक्षात् श्रीहरि का अपरोक्ष दर्शन प्राप्त किया था प्रभु ने प्रसन्न होकर उनको वर मांगने को कहा किन्तु दैवीमायावृत होने से मोक्ष न मांग कर प्रभो ! आप जैसा पुत्र चाहिये, आपकी बाललीला देखना चाहते हैं, उन्हें तथास्तु कहकर वरदान दिया था, वे ही अब वसुदेव देवकी, नन्द यशोदा के रूप में व्रजमण्डल में अवतीर्ण हुये हैं-उन्हीं की इच्छा से ग्रहण कर लिया है, सुचिन्त्य अर्थात् सौन्दर्य-माधुर्य-सौकुमार्य-सौष्ठवादि गुणयुक्त सुगमता से चिन्तन करने योग्य विग्रह है जिनका भक्तानुग्रहकातर अनुग्रह विग्रह श्रीकृष्ण के बिना अन्य कौन जीवों का आश्रय हो सकता है।

तृतीय विशेषण अचिन्त्यशक्तेः इस पद का विवरण दर्शाते हैं-चिन्तयितुंशक्याचिन्त्या, न चिन्त्या अचिन्त्या तादृशी शक्तिर्यस्य तस्मात् इस व्युत्पत्ति से भगवान् की अनन्त शक्तियों का चिन्तन नहीं किया जा सकता है। इसमें श्रुति प्रमाण दर्शाते हैं 'परास्य शक्तिः' इत्यादि। अर्थात् उस परमात्मा की ज्ञान बल क्रिया प्रभृति विविध शक्तियां सभी परमोत्कृष्ट एवं स्वाभाविकी हैं। ऐसी बात लोक वेद सर्वत्र सुनी जा सकती है, अनुभव की जा सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं श्रीमुख से कहा-हे महाबाहो ! अर्जुन ! मेरी परा और अपरा ये दो प्रकार की शक्ति परम प्रसिद्ध हैं। ''भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो! ययेदं धार्यते जगत्'' गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द इन निज कारण रूप तन्मात्रा सहित पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश ये पञ्च महाभूत और मन, बुद्धि

अहंकार इस प्रकार आठ रूपों में विभक्त मेरी यह अपरा प्रकृति जगद्रूप कार्य का उपादान कारण है। इस अचेतन शक्ति से परे दूसरी जो स्वरूप-स्वभाव से अचिन्त्य, विलक्षण ज्ञाता-भोक्ता कर्ता होने से अचेतन से उत्तम है उस जीवात्मा स्वरूप चेतन को मेरी अभिन्न शक्ति समझो। कार्य शरीर में प्रविष्ट मेरी ज्ञान रूपा चैतन्य रूपा यही शक्ति क्षेत्रसंज्ञक जड समूह रूप जगत् को धारण करती है।

चतुर्थ विशेषण अविचिन्त्य साशयात् इति। आशय कहते हैं चेष्टा को उसके साथ वर्तमान साशय अर्थात् चेष्टायुक्त जिनकी चेष्टा को ब्रह्मरुदेन्द्रादिदेव भी नहीं जान सकते अन्य साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या ? अतएव श्रीकृष्ण को अविचिन्त्यसाशय कहा गया है उनके विना साधकों को कौन गति प्रदान करे। श्रुति कहती है-जिनके स्वरूप गुणशक्त्यादि के वर्णन में प्रवृत्त हमारी वाणी मन सहित उनकी सीमा को न प्राप्त कर जहाँ से लौट जाती है ऐसे असीम महिमाशाली श्रीकृष्ण की शरणागति (प्रपत्ति) के विना जीवों को श्रेयः की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार प्रपत्ति योग का वैशिष्ट्य प्रतिपादन किया गया। प्रपत्ति के भेदों का निरूपण अर्थपञ्चक विवरण में करेंगे ॥८॥

उक्तलक्षणस्य भगवतः कृपा दैन्यादिगुणयुक्तेषु मर्त्येष्वाविर्भवति, इत्याह कृपेत्यादिना--

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत् प्रेम विशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा ॥९॥

पूर्वोक्त लक्षण लक्षित भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा दैन्यादि गुणयुक्त मनुष्यों में प्रकट होती है, यह बात आद्याचार्य कृपास्य दैन्यादियुजि-इत्यादि नवम पद्य से व्यक्त करते हैं।

दैन्यादियुजि दैन्यादिसंपन्नेऽस्य महात्मनोऽनन्याधिपतेः श्रीकृष्णस्य कृपा प्रजायते प्रकटीभवतीत्यर्थः। दैन्यादयस्तु श्रीमत्केशवकाश्मीरीचरणैरुक्ताः, "आदौ दैन्यं हि संतोषः परिचर्या ततः परम्। श्रद्धा तथा च सत्संगोऽथ सद्धर्मरुचिस्ततः। कृष्णेरतिस्ततो भक्तिर्या प्रोक्ता प्रेमलक्षणा। राधिकाकृष्णसंप्राप्तौ क्रमः प्रोक्तो महत्तमैरिति।"

भावार्थ - विद्या धन वैभव-पदप्रतिष्ठा अभिजन प्रभृति महत्वशाली

विषयों से भी जिनका मन अभिभूत नहीं होता, जो सदा फलवान् वृक्ष, सजल मेघ के समान विनयावनत रहते हैं, ऐसे दैन्यादिगुणयुक्त धर्मनिष्ठ सत्पुरुष में जिनका कोई अधिपति नहीं है प्रत्युत जो सबका अधिपति सर्वेश्वर है, उन सौशील्य-औदार्य-शरण्यादि गुणगणनिलय महात्मा श्रीकृष्ण की अहैतुकी कृपा प्रकट होती है। दैन्यादिगुण क्या हैं ? आदि शब्द से किनका ग्रहण किया है? इस विषय में वेदान्त कौस्तुभ प्रभा, गीता तत्त्व प्रकाशिका, क्रमदीपिकादि ग्रन्थ प्रणेता जगद्गुरु निम्बार्कदेशिकवर जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरीभट्टाचार्यचरण कहते हैं, ''साधक को सर्वप्रथम दैन्य भाव (विनम्रता) धारण करना चाहिये'' तदनन्तर सन्तोषवृत्ति लेनी चाहिए, फिर गुरुजनों के प्रति सेवा भाव होना चाहिए। ''तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया'' कहकर भक्तवत्सल प्रभु ने भी इसी का संकेत किया है!। तत्पश्चात् श्रद्धा विश्वास के साथ सत्संग किया जावे, सत्संग के प्रभाव से सद्धर्म-भागवत धर्म में रुचि पैदा होगी, यही रुचि श्रीकृष्ण में अनुरागजन्य रति उत्पन्न करती है। तब श्रीहरि की अहैतुकी कृपा प्रकट होती है। इसी कृपा से फल रूपा भक्ति जो प्रेमलक्षणास्वरूप है, उत्तमा है वह आविर्भूत होती है। यही प्रेमलक्षणाभक्ति श्रीराधाकृष्णयुगल रूप ब्रह्म का सान्निध्य प्रदान करती है। भगवद्भावापत्तिरूपमोक्षोपलब्धि के लिए यही क्रम स्वरूप गुणशील स्वभाव से सनकादिनारदनिम्बार्क प्रभृति पूर्वाचार्यचरणों ने परिवर्णित किया है।

भक्तिं विभजति साचोत्तमेति। भक्तिः द्विधा विहिताविहिता चेति। विहिता भक्तिरपि द्विधा फलरूपा साधनरूपाचेति। तत्रसाधन-रूपा द्विविधा ज्ञानांगभूता स्वातंत्र्यमुक्तिदायिकाचेति। ज्ञानांगभूता द्विविधा सगुणा निर्गुणा चेति। सगुणाभक्तिस्त्रिविधा ज्ञानमिश्रा वैराग्यमिश्रा कर्ममिश्रा चेति। निर्गुणा भक्तिरेकैवेति। साधनरूपा भक्तिः निरूपिता। फलरूपा भक्तिस्तु विष्वक्सेन-गरुडादिनित्यमुक्तगता एका एव। अविहिता भक्तिश्चतुर्विधा कामजा द्वेषजा भयजा स्नेहजाचेति। एवमन्येपि भेदाः समूहनीयाः।

भावार्थ - आचार्यपाद इस पद्य के प्रथम तीन चरणों से भक्ति की महिमा का वर्णन कर अन्तिम चतुर्थ चरण से भक्ति के भेद बतलाते हैं ''सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा'' इति। भक्ति दो प्रकार की है विहिता और

अविहिता, विहिता भक्ति भी फलरूपा और साधनरूपा के भेद से दो प्रकार की है। उनमें ज्ञानाङ्गरूपा तथा स्वातन्त्र्यमुक्तिदायिका के भेद से साधन रूपा भक्ति के भी दो स्वरूप होते हैं। ज्ञानाङ्गभूता के सगुण-निर्गुण के भेद से दो ही प्रकार बताये हैं। इनमें सगुण भक्ति के तीन भेद बताये गये हैं-ज्ञानमिश्रा, वैराग्यमिश्रा और कर्ममिश्रा। ज्ञानमिश्रा भक्ति सखा उद्धवजी में विद्यमान है। वैराग्यमिश्रा भक्ति बालसखा विप्र सुदामाजी की परम प्रसिद्ध है। कर्ममिश्रा भक्ति भक्त ध्रुव तथा अक्रूर आदि में विद्यमान है। ये सभी भगवत् पार्षद श्रेणी में आते हैं। निर्गुण भक्ति का तो एक ही स्वरूप है जो निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं। उन सभी यतिवरों में विद्यमान रहती है। इस प्रकार साधनरूपा भक्ति का निरूपण किया गया। अब फलरूपा विहिता भक्ति का स्वरूप बताते हैं-वह तो नित्यमुक्त देवर्षि नारद, विष्वक्सेन गरूडादि तथा निरपेक्ष भक्त प्रह्लाद, अम्बरीष, विभीषण प्रभृति महानुभावों में रहने वाली एक ही प्रकार की है।

अविहिता भक्ति के चार भेद बताये हैं-कामजा, द्वेषजा, भयजा और स्नेहजा। ''गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः। सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ॥'' (भा० ७ स्क० अ० १ श्लो० ३०) हे राजन् ब्रज की गोपियों ने श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण से मिलने की तीव्र लालसा (काम) से उनका नित्य चिन्तन किया, ''देवकी का अष्टम गर्भ तेरा काल होगा'' ऐसी आकाशवाणी सुनकर कंस ने भय से श्रीकृष्ण का नित्य चिन्तन किया, शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि राजाओं ने पूर्व जन्म के वैरभाव से इस जन्म में भी कृष्ण से द्वेषभाव रखा, अतः निरन्तर स्मरण करते रहे, समस्त यदुवंशियों और आप लोगों ने पारिवारिक सम्बन्ध के कारण श्रीकृष्ण से अटूट स्नेह किया है और कर रहे हैं, हम सब ऋषि मुनि भक्ति भाव से उनका स्मरण करते हैं, अतः ये सब माया बन्धन से मुक्त है। ''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतांतरन्ति'' के अनुसार ये सभी माया से पार हुये हैं। इस प्रकार गुणकर्म स्वभाव के भेद से भक्ति के अनन्तानन्त भेद समझने चाहिये ॥९॥

अथ शास्त्रविषयज्ञानायार्थपञ्चकमाह उपास्येति ।

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम् ।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः ॥१०॥

भावार्थ - अब इस वेदान्त शास्त्र के प्रतिपाद्य विषयों का सर्वाङ्गीण परिज्ञान हेतु सिंहावलोकन न्याय से अर्थपञ्चक का स्वरूप बतलाते हैं- भगवत् प्राप्ति के लिए साधकों को उपास्य देव ब्रह्मतत्त्व, उपासक स्वरूप जीव तत्त्व, कृपाफल, भक्तिरस एवं प्रतिबन्धक रूप विरोधि तत्त्व इन पांच अर्थों का सम्यक्तया ज्ञान करना चाहिए इत्यादि इस दशम पद्य का भाव है। व्याख्याकार प्रत्येक पदों का समन्वयपूर्वक विश्लेषण करते हैं।

इमे उपास्य रूपमित्यादयः पंचाप्यर्थाः साधुभिर्ज्ञेया इत्यन्वयः। उपास्यस्य श्रीकृष्णरामचंद्रनृसिंहप्रभोः स्वरूपं निखिलजगदेककारणत्वं अनंतानवद्यकल्याणगुणाकरत्वं नियन्तृत्वं, अनन्यापेक्षमहिमैश्वर्यादिभिन्नत्वं प्रपन्नत्वादि। कृपाफलं परमवैराग्यं बुद्धेर्भगवदेकनिष्ठत्वम्।

भावार्थ - प्रस्तुत पद्य में निर्दिष्ट उपास्यरूप, उपासकरूप, कृपाफल, भक्तिरस और विरोधितत्त्व इन सभी पांचों अर्थों का मुमुक्षु साधक जनों को जानना चाहिए। प्रथम अर्थ-उपास्य रूप क्या है ? इसका विवेचन करते हुये कहते हैं, उपासितुं योग्यं इस अर्थ में उपपूर्वक आस् धातु से कर्म में ण्यत् प्रत्यय करने पर उपास्य शब्द बना। वह पूर्ण-पूर्णतर-पूर्णतम भक्तवत्सल प्रभु करुणावतार श्रीनृसिंह, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के निमित्त यहाँ विवक्षित है। अतः उनके माहात्म्य बोध स्वरूप का ज्ञान करें, उनकी क्या महिमा है? इस जिज्ञासा में कहते हैं ''निखिलजगदेक-कारणत्वम्'' अर्थात् मूर्तामूर्त निखिल जगत् प्रपञ्च के निमित्तोपादान उभयविध कारण केवल श्रीहरि ही हैं, इसी प्रकार अनन्तानन्त-अनवद्य-सार्वज्ञ-कारुण्य-सौशील्य-वात्सल्य-औदार्य, सौन्दर्य, माधुर्यादि कल्याण गुणों के एकमात्र आश्रय ये ही प्रभु हैं, ''अणोरणीयान् महतो महीयान्'' इत्यादि शास्त्र वचनों के अनुसार अणुरूप जीव को अन्तर्यामीरूप से नियन्त्रित करने वाले और आकाश कालादि महान् पदार्थों को भी महत्तमरूप से आवृत कर नियन्त्रित करने वाले सर्व नियन्तृत्व रूप भी ये ही परमात्मा हैं। अतः उनकी उपासना विधेय है। द्वितीय अर्थ-उपासक स्वरूप क्या है? इस जिज्ञासा का समाधान करते हैं-''तदुपासकस्यरूपम्'' तस्य पूर्वोक्त लक्षणस्य उपास्यस्य ब्रह्मणः उपासकस्य बद्धमुक्तादिभेद भिन्नस्य जीवस्य रूपं अपि ज्ञेयम्। उपास्ते इत्यर्थे उपपूर्वक आस्धातोः कर्तरिण्वुल् प्रत्यये अकादेशे उपासक इति निष्प-

द्यते ।'' अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणलक्षित परब्रह्म उपास्यदेव श्रीकृष्ण की उपासना करने वाले बद्धमुक्तादि जीवों के स्वरूप का भी ज्ञान करना चाहिये। उपपूर्वक आस् धातुसे कर्ता में प्रत्यय करने पर उपासक शब्द बना। वह कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्त्यादि साधन सम्पन्न, अन्य प्राप्त महिमैश्वर्यादि ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिदेव समुदाय की अपेक्षा न रखता हुआ स्वर्गादि सुख भोग निरपेक्ष, अनन्य भाव से श्रीहरि की आराधना करने वाला जीव समुदाय ही उपासक है। तृतीय अर्थ-भगवत्कृपा का फल क्या है? इस जिज्ञासा पर कहते हैं, परम वैराग्यम्-अर्थात् लौकिक धन सम्पदा स्त्री-पुत्रादि का अपार सुखभोग विद्यमान रहने पर भी उनके प्रति मन को अनासक्त बनाना तथा बुद्धेर्भगवदेक निष्ठत्वम्-अर्थात् बुद्धि का अपने उपास्य भगवान् श्रीहरि में एकनिष्ठ होना कृपाफल का स्वरूप है। भगवत्कृपा के बिना उपासक में इस प्रकार के भाव नहीं बन सकते। अब भक्तिरस-इस चतुर्थ अर्थ का विवेचन करते हैं।

भक्तिरसश्च पंचधा।
शान्तं दास्यं च वात्सल्यं सख्यमुज्ज्वलमेव च।
अमी पंचरसा मुख्याः ये प्रोक्ता रसवेदिभिः ॥

विभावानुभावसात्त्विकसंचारिभिः स्थायीभावाख्यो भक्तिरसो भवति यद्विषयकोभावःस विषयालम्बनविभावः यथा श्रीकृष्णः। योभावस्याधिकरणम् आश्रयालंबनविभावो यथा श्रीकृष्णभक्तः। ये स्मारका भूषणालंकारादयस्ते उद्दीपनविभावाः। ये भावज्ञापका गीत नृत्यादयः तेऽनुभावाः। ये चित्तादिक्षोभकास्ते सात्त्विकाः ते चाष्टौ स्तंभस्वेदरोमांचवेपथुस्वरभंगवैवर्ण्याश्रुपुलका इति। निर्वेदहर्ष गर्वमदवितर्कमोहादयो व्यभिचारिणः।

भावार्थ - भक्तिरस शब्द का शाब्दिक अर्थ है ''भक्त्या भगवत्कृपैकलभ्यया रस्यते आस्वाद्यते (अनुभूयते) असौ इति भक्तिरसः'' अथवा भक्तिरेव रसः आनन्दस्वरूप इत्यादिः।

अर्थात् भक्ति द्वारा अनुभूयमान भगवद्भावापत्तिरूप मोक्ष ही भक्ति रस कहलाता है, अथवा भक्तिरूपी रस जो आनन्द स्वरूप है। भक्ति रस पांच प्रकार का है। रसवेत्ता आचार्यों ने शान्त-दास्य-वात्सल्य-सख्य-उज्ज्वल इस भेद से ये पांच रस मुख्य रूप से बतलाये हैं। ''विभावानुभाव

सात्विकसंचारिभिः स्थायिभावाख्यभक्तिरसोभवति'' अर्थात् विभाव अनुभाव, सात्त्विक भाव और सञ्चारी भावों से प्रीत्यतिशय स्थायी भाववाला भक्तिरस समुत्पन्न होता है। जिस विषयक स्थयीभाव होता है वह विषयालम्बन विभाव है जैसे श्रीकृष्ण। जो स्थायीभाव का अधिकरण है वह आश्रयालम्बन विभाव है जैसे प्रकृत में कृष्णभक्त। जो स्मरण दिलाने वाले आराध्य के आभूषण वनमाला किरीट मुकुट कुण्डलादि हैं, वे उद्दीपन विभाव हैं। इसी प्रकार जो स्थायी भाव के ज्ञापक गीत-वाद्य-नृत्यादि हैं उनको अनुभाव कहते हैं। चित्त को द्रवीभूत करने वाले जो भाव हैं उनकी सात्त्विक संज्ञा है। स्तब्ध होना, पसीना आना, रोमाञ्चित होना, शरीर में कम्पन पैदा होना, गद्‌गद वाणी अर्थात् स्वरभङ्ग होना, आकृति में रक्तपीतादि वर्णो का परिवर्तन होना, अविरल अश्रुपात होना और शरीर का पुलकित होना-इस प्रकार के आठ भक्तिरस के सात्त्विक भाव कहे गये हैं। अन्तर्धान वियोग में निर्वेद-खिन्नता, संयोग-मिलन में हर्ष, नित्य सान्निध्य मिलने पर गर्व, मद और बिछुड़ने की आशंकारूपी वितर्क तथा मोह आदि जो भाव उदित होते हैं, उन्हें व्यभिचारि भाव कहा जाता है।

मन्तव्य-सामान्यतया रस परम्परा के आचार्य आनन्दवर्द्धन अभिनवगुप्त-मम्मट-विश्वनाथ प्रभृति महानुभावों ने अपनी अपनी रचनाओं में शृङ्गार-हास्य-करुण-वीर-रौद्र-भयानक-वीभत्स-अद्‌भुत और शान्त इस प्रकार नौ रसों का ही विवेचन किया है। भक्ति को रस से पृथक् भाव रूप स्वीकृत किया है। ''विभावानुभाव सञ्चारि-संयोगाद् रसनिष्पत्तिः'' कहकर रसनिष्पति में सात्विक भाव का साक्षात् संकेत नहीं किया है। विवरण या व्याख्या आदि में सात्विकादि का उद्रेक अवश्य माना है। भक्ति सम्प्रदाय के समस्त वैष्णवाचार्यो ने भक्ति को रस माना है भाव नहीं। अतः सुदर्शनचक्रावतार आद्य निम्बार्काचार्य ने अर्थपञ्चक निरूपण में कण्ठरव से ''भक्तिरसः'' कहा है। इसी भक्तिरस का विवेचन ''तत्त्वसार प्रकाशिनी नामक व्याख्या के रचयिता श्रीनन्ददासजी ने भेद प्रदर्शन पूर्वक विभावानुभावसात्विक व्यभिचारी भावों के साथ रस परम्परा की पुष्टि की है। जैसा आगे स्पष्ट कर रहे हैं।

तत्र शान्तभक्तिरसे निखिलजगदेककर्त्ता अनन्तानवद्यसर्वज्ञ-

सत्यसंकल्पत्वादिककल्याणगुणाकरः, अनधिकातिशयानंदस्वरूपः, परमात्मा नारायणः परं ब्रह्म नराकृतिः श्रीकृष्णोविषयालम्बनः, शंकरेन्द्रादयोदेवा आश्रयालम्बनाः। उपनिषद्विचारादयः उद्दीपनविभावाः नासाग्रदृष्ट्यादयोऽनुभावाः। प्रलयवर्जिता अश्रुपुलकरोमांचाख्या सात्त्विका निर्वेद स्मृत्यादयः संचारिणः शान्तिरतिस्थायीति।

भावार्थ - भक्ति रस के पांच भेदों में शान्त भक्तिरस के विषय में विषयालम्बन विभाव स्वरूप श्रीकृष्ण की विशेषताओं को दर्शाते हैं- भगवान् श्रीकृष्ण जडचेतनात्मक निखिल जगत् के एकमात्र रचयिता हैं, वे अनन्त अनवद्य सर्वज्ञत्व सत्यसङ्कल्पत्व सौशील्यं कारुण्यादि कल्याणमय गुणों के आकर (आश्रय) हैं, जिनका आनन्दमय स्वरूप अनन्याधिक और अनन्यातिशय है। अर्थात् न तो कोई उनसे अधिक है न ही अन्य कोई उनसे अतिशय है। वे परमात्मा साक्षात् नारायण एवं परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं, ऐसे लीलावतार क्रम में नराकृति श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव हैं। ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिदेव समुदाय तथा ऋषि मुनीश्वर आश्रयालम्बन विभाव हैं।

उपनिषद् विचार, सत्संग श्रवण, नाम संकीर्तन, लीलाचिन्तनादि उद्दीपन विभाव समझने चाहिये। आसन प्राणायाम नासाग्रदृष्टिपूर्वक ध्यान मन्त्र-जप-अर्चन आदि अनुभाव हैं। प्रलयवर्जित अश्रुपात पुलकित तनु रोमाञ्च प्रभृति पूर्वोक्त आठ सात्विक भाव, निर्वेद-स्मृति संसार-विरति प्रभृति सञ्चारिभाव शान्ति रति स्थायीभाव वाला प्रथमशान्त भक्तिरस समझना चाहिए।

दास्यरसे तु सर्वेश्वरः सर्वशक्तिः परमकारुणिकशरणागतपालको भक्तवत्सलः प्रभुः श्रीकृष्णो विषयालम्बनः। अर्जुनोद्धवपरीक्षिदादय आश्रयालम्बनाः। उच्छिष्टस्रग्गंधमाल्यादय उद्दीपनविभावाः। श्रीकृष्णोक्तकरणादयोऽनुभावाः। स्तंभादयोऽष्टौ सात्त्विकाः। हर्षगर्वादयो हि संचारिणः। स्नेहादि स्थायीभावः श्रीकृष्णवियोगे तु दशदशाः अंगेषु-तापः, कृशता जगत्यालम्बशून्यता अधृतिजड़ता व्याधिरुन्मादोमूर्च्छितंमृतिरिति।

भावार्थ - दास्य रस में तो श्रीभूलीलादि निखिलशक्ति संवलित, परमकरुणासिन्धु शरणागतरक्षक, भक्तवत्सल, सर्वेश्वर प्रभु श्रीकृष्ण

विषयालम्बन हैं, अर्जुन-उद्धव-अक्रूर-परीक्षित् आदि भक्त आश्रयालम्बन हैं। प्रभु को समर्पित प्रसाद चन्दन निर्माल्य तुलसी पुष्पमालाओं का सेवन उद्दीपन विभाव हैं। उद्धवजी कहते हैं- ''त्वयोपभुक्तस्रग् गन्धवासोऽलं-कारचर्चिताः। उच्छिष्ट भोजिनोदासाः तव मायां जयेमहि।'' (भा० ११ स्क० अ० ६ श्लो० ४६) हे प्रभो ! हमने आपकी धारण की हुई माला पहनी, आपके प्रसादीरूप चन्दन का लेपन किया आपके श्रीअंग से उतारे गये वस्त्र पहने, आपके द्वारा धारण किये गये कनक कुण्डलादि आभूषणों से अपने अङ्गों को सजाते रहे। हे स्वामिन् ! हम आपके उच्छिष्ट प्रसाद खाने वाले सेवक हैं। इसलिए हम आपकी माया पर विजय प्राप्त कर लेंगे। अतः हे नाथ हमें आपकी माया से डर नहीं है, डर हैं तो केवल आपके वियोगजन्य सन्ताप से। इत्यादि उद्दीपन हैं।

भक्तवत्सल सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करना अनुभाव है। प्रभु ने उद्धव से कहा ''न वस्तव्यं त्वयैवेह मयात्यक्ते महीतले। जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे। त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु। मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृक् विचरस्वगाम्।'' (भा० ११ स्कन्ध अ० ८ श्लोक ५-६) हे भद्र उद्धव ! जब मैं इस भूतल का परित्याग कर दूँगा, तब तुम यहाँ पर नहीं रहना क्योंकि कलियुग में मनुष्य अधिकतर अधर्म की ओर प्रवृत्त होंगे पापकर्म में रुचि रखेंगे। अतः हे प्यारे ! अब तुम अपने बन्धु-बान्धवों और स्वजनों का स्नेह बन्धन तोड़कर अनन्यभाव से मुझ में अपना मन लगाओ और समदृष्टि से पृथ्वी में स्वच्छन्द विचरण करो इस प्रकार प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर उद्धवजी बद्रिकाश्रम चले गये। इत्यादि प्रसङ्ग दास्य भक्ति रस के अनुभाव कहे गये हैं। पूर्वोक्त स्तम्भादि आठ सात्विक भाव यहाँ पर भी समान हैं। हर्ष गर्वादि भी उसी प्रकार सञ्चारिभाव समान समझने चाहिए। स्नेहादि स्थायी भाव वाला यह दास्य भक्ति रस निर्णीत हुआ। श्रीकृष्ण के वियोग में तो भक्तों की दश दशाओं (अवस्थाओं) का वर्णन किया गया है। जैसे अङ्गों में ताप, अङ्गों में कृशता, जगत् में अपने आपको आश्रय शून्य समझना, धैर्य का ह्रास होना, जड़ता आजाना, नाना प्रकार के मानसिक शारीरिक आधि-व्याधि से ग्रस्त होना, उन्माद अर्थात् पागल की जैसी स्थिति, मूर्च्छा आना और अन्त में मृति

देहावसान इत्यादि दश दशा कही गई है।

एवं सख्यरसेऽपि चतुरशिरोमणिः सत्यसंकल्पो मेधावी सुंदरः सुवेशो द्विभुजः श्रीकृष्णो विषयालम्बनः। मधुमंगलसुवलसुदामस्तोकादयोऽनेकविधाः सखायः आश्रयालम्बनाः। शृङ्गवेत्रादयश्चोद्दीपनविभावाः। एकशय्यासनभोज्यविविधविचित्रपरिहास विस्वरवाद्यवाहकादिकेलिप्रभृतयोऽनुभावाः। स्तंभादयोष्टौ सात्विका हर्षगर्वाद्याः संचारिणः सख्यरतिः स्थायीभावः दशदशापूर्ववत्।

भावार्थ - इसी प्रकार सख्य भक्तिरस में भी चतुर शिरोमणि सत्यसंकल्प वाले मेधावी परमसुन्दर, मनोहर वेश है जिनका ऐसे द्विभुज मुरलीधर श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव हैं, दाम-श्रीदाम-सुदाम-वसुदाम, मधुमंगल, मनसुखा, स्तोक, सुबलादि, सामान्य-नर्म-प्रियसखाओं का समुदाय आश्रयालम्बन विभाव है। शृङ्गवाद्य, वंशी, वेत्र (वेत) रज्जु, लताकुञ्ज, वृन्दावन गोवर्धन, मानसी गङ्गादि स्थानसामग्री उद्दीपन विभाव हैं। एक ही शय्या में शयन एक ही आसन में आसीन, एक ही पात्र में स्थित भोज्य वस्तु का एक साथ सेवन, विविध विचित्र हास परिहास करना, आवाज बिगाडकर पशु पक्षियों के शब्दों का अनुसरण करना, वेढंग से वाद्य बजाना, नेत्रनिमीलन (आंख मिचौनी) स्कन्धारोहण इत्यादि नानाविध केलि क्रीडायें अनुभाव कहलाती है।

श्यासुन्दर श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन करते हुये महामुनि श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षित से कहते हैं हे राजन् ! भक्तवत्सल भगवान् बालकृष्ण जब गोचारण करते यमुना तट पहुँचे तब सखाओं से कहने लगे ''अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छबालुकम्। स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिका ध्वनि प्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम्। अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारुढं क्षुधार्दिताः। वत्सा समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम्। तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्यशाद्वले। मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा॥'' (भा० १० स्कन्ध अ० १३ श्लो० ५-७) हे प्यारे ! मित्रो! देखो यमुनाजी का यह पुलिन कितना रमणीय है, यहां की बालू कितनी कोमल और स्वच्छ है। हमारे लिए खेलने की सभी वस्तुएँ यहाँ विद्यमान हैं, देखो तो सही एक ओर रङ्ग बिरङ्गे कमल खिले हुये हैं और उनकी सुगन्ध

से खिंचे आये भ्रमर समूह झुण्ड के झुण्ड मधुर गुञ्जार कर रहे हैं, तो दूसरी ओर मनोहर खगवृन्द अति मधुर कलरव कर रहे हैं, जिसकी प्रतिध्वनि से गुञ्जायमान लतावृक्ष इस स्थान की शोभा बढा रहे हैं। अब हम लोगों को यहाँ भोजन कर लेना चाहिए, क्योंकि दिन बहुत चढ आया है तथा हम लोग भूख से पीड़ित हो रहे हैं। बछड़े यमुना जल पीकर समीप ही धीरे-धीरे हरी हरी घास चरते रहें। श्रीकृष्ण की बात सुनकर सखाओं ने एक स्वर से कहा ठीक है-ठीक है। इस प्रकार उन्होंने बछड़ों को पानी पिलाकर घास में छोड़ दिया और अपने-अपने छींके खोल-खोल कर श्रीहरि के साथ सानन्द भोजन करने लगे। इस भोजन वेला की एक झांकी और देख लीजिए ''बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु। तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः स्वर्गेलोके मिषति बुभुजे यज्ञभुक् बालकेलिः॥'' (भा० १० स्क० अ० १३ श्लो० ११) शुक मुनि कहते हैं-उन्होंने अपनी प्यारी वंशी को तो कमर की फेंट में घुसा रखी थी। शृङ्गवाद्य और वेंत को बगल में दबा रखा था। वायें हस्तकमल में अत्यन्त मधुर घृत मिश्रित दध्योदन का ग्रास था और अङ्गुलियों में आचार-मुरब्बे आदि रख रखे थे। सभी ग्वाल बाल सखाओं को चारों ओर से घेर कर बैठे थे तथा प्रभु स्वयं उनके बीच में बैठकर अपनी विनोदभरी बातों से समस्त सखाओं को हँसाते जा रहे थे। जो सर्वविध यज्ञों में स्वाहा-स्वधा द्वारा अर्पित हव्य कव्यों के एकमात्र भोक्ता हैं वे ही भगवान् ग्वाल बालों के साथ बैठकर इस प्रकार बाललीला करते हुये भोजन कर रहे थे और इस दृश्य को देखकर ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिदेववृन्द आश्चर्य चकित हो रहे थे। स्तम्भादि आठ सात्विक भाव, हर्षगर्वादिसञ्चारिभाव पूर्ववत् हैं सख्यरति स्थायी भाव वाला सख्यभक्तिरस कहा गया है। सखास्वरूप कृष्ण के वियोग में होने वाले अङ्गों में ताप, कृशतादि दश अवस्थायें दास्यभक्ति रस में बताये अनुसार समझनी चाहिए।

वात्सल्यरसे तु कोमलाङ्गः कलभाषणः सर्वलक्षणसंयुतः, लाल्यबालः श्रीकृष्णः विषयालम्बनः। नंदोपनंदरोहिणीयशोदा आश्रयालम्बनाः, स्मितजल्पितचापलयवाल्यचेष्टिताद्या उद्दीपन-विभावाः अंगाभिर्मार्जनाशीर्वादनिदेशलालनपालनादयोऽनुभावाः

अत्राष्टौ सात्त्विकाः स्तवस्तु विशेषः, हर्षशंकाद्या व्यभिचारिणः वात्सल्यं स्थायी। वियोगे दशदशा पूर्ववत् ।

भावार्थ - वात्सल्य भक्ति रस में जिनके अङ्ग प्रत्यङ्ग अत्यन्त कोमल हैं, जो सुमधुर तोतली वाणी बोलते हैं, जो सभी लक्षणों से युक्त हैं और लालन करने योग्य बाल स्वरूप है जिनका ऐसे श्रीकृष्ण विषयालम्बन हैं एवं वसुदेव देवकी, नन्द यशोदा, रोहिणी उपनन्दादि गोपगण आश्रयालम्बन हैं। मन्द हास्य, कलभाषण स्वाभाविक चाञ्चल्य और बाल्यावस्थाजनित विविध चेष्टाऐं-इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। श्रीअङ्ग में तैलाभ्यङ्गमर्दन कराना, उबटन लगाना, मार्जन स्नान अनुलेपन कराना वस्त्राभूषणादि धारण कराना, आशीर्वाद देना गोचारणादि के समय सावधानी रखने के लिए निर्देश देना, विविध प्रकार से लालन पालन करना-इत्यादि जो सेवा क्रम हैं वे वात्सल्यभक्तिरस के अनुभाव हैं। पूर्व निर्दिष्ट स्तम्भादि आठ सात्विक भाव यहाँ पर भी उसी रूप में समन्वित करने चाहिए। इन सात्विक भावों में यहाँ पर चतुर्भुज रूप से प्रकट होते समय मथुरा में वसुदेव-देवकी द्वारा स्तवन, नन्दादि गोपों द्वारा गोकुल में सम्पादित जात कर्म-उत्सव आदि को विशेष समझना चाहिए ।

वसुदेवजी कहते हैं ''त्वमस्यलोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर । राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूहमाना निहनिष्यसे चमूः।'' (भा. १० स्कन्ध अ. ३ श्लो. २१) हे प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं, इस जगत् की रक्षा के लिए ही आपने मेरे घर अवतार लिया है। इस समय भूतल में कोटिशः असुरसेनापतियों ने राजाओं का रूप धारण कर उपद्रव मचा रखा है। उनके पास असंख्य सैन्यबल विद्यमान है। किन्तु मुझे विश्वास हो गया है आप उन सबका संहार करेंगे। इसी प्रकार माता देवकी भी प्रभु का स्तवन करती हैं- ''रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म-ज्योतिनिर्गुणं निर्विकारम्। सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं सत्वं साक्षात् विष्णुरध्या-त्मदीपः॥ उप संहर विश्वात्मन्नदोरूपमलौकिकम्। शंखचक्रगदापद्मश्रियाजुष्टं चतुर्भुजम्॥'' (भा. १० स्कन्ध अ. ३ श्लो. २४, ३०)।

हे अच्युत ! वेदों ने आपके जिस रूप को अव्यक्त और सबका कारण बताया है, जो ब्रह्मज्योतिःस्वरूप सत्वादि गुणरहित, जन्मादि

विकारशून्य है जिसे निर्विशेष, अनिवर्चनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्तारूप में कहा गया है, हे प्रभो ! आप सर्वव्यापक वही मन बुद्धि आदि अध्यात्मतत्व के प्रकाशक स्वयं भक्तवत्सल विष्णु हैं। आप अलौकिक रूप से प्रकट हुये हैं। हे विश्वात्मन् शंख-चक्र-गदा-पद्म की शोभा से युक्त इस अलौकिक चतुर्भुज स्वरूप को अपने में अन्तर्निहित कर बालरूप से दर्शन प्रदान करें, इत्यादि ''नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः। आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥१॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै। कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥२॥'' (भा० १० स्क० अ० ५) उधर गोकुल नगरी में-गोपों के राजा नन्द बाबा महान् उदार पुरुष थे। पुत्र का जन्म होने पर तो उनका हृदय अनुपम आह्लाद जनित आनन्द से भर गया। उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर लिए। तदनन्तर वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर स्वस्तिवाचन कराया और नवजात पुत्र का जातकर्म संस्कार सम्पन्न कराया। साथ ही देव पितरों का अर्चन कर धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया। इस प्रकार सात्विक भाव के अन्तर्गत यह विशेष बात कही गयी। हर्षित होना, शरीर पुलकित होना, नानाविध अनिष्ट की शंका करना इत्यादि व्यभिचारि भाव कहे गये हैं। वियोग में होने वाली अनुतापादि दश दशाएं पूर्व बताये अनुसार ही हैं। इस प्रकार स्नेह स्थायीभाव वाले वात्सल्यभक्तिरस का विवेचन किया गया।

शुक्लरसे च सर्वमाधुर्यवान्कमनीयकिशोरमूर्त्तिः श्रीकृष्णो विषयालम्बनः। श्रीकृष्णप्रिया आश्रयालम्बनाः। वंशीरववसंतकोकिलाद्या उद्दीपनाः। कटाक्षमोक्षस्मितादयोऽनुभावाः। सर्वेऽपि सात्त्विकाः। आलस्यौग्रहीनानिर्वेदादयो व्यभिचारिणः। प्रियतारतिः स्थायीभावः। हास्यादीनामत्रैवान्तर्भावात् पञ्चैवरसाः।

भावार्थ - शुक्लरस अर्थात् उज्ज्वल भक्तिरस में सर्वमाधुर्यवान्-रूपमाधुर्य गुणमाधुर्य, लीलामाधुर्य और स्वभाव माधुर्य से परिपूर्ण अत्यन्त कमनीय नव किशोर मूर्तिवाले भगवान् श्रीकृष्ण विषयालम्बन विभाव और नन्दनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण की प्रिया-प्रियतरा-प्रियतमा व्रजाङ्गना रूक्मिण्यादि महिषी-रङ्गदेव्यादि सेवित श्रीराधा आश्रयालम्बन विभाव हैं। वंशीध्वनि, वसन्त ऋतु, कोयलों की कूक, भ्रमरों का गुञ्जन, यमुना प्रवाह,

यमुना पुलिन, वंशीवट, लता कुञ्जादि निभृत स्थान-इत्यादि उद्दीपन विभाव कहे गये हैं। कटाक्ष मोक्ष अर्थात् तिरछी चितवन, मन्द मुसकान, ऐकान्तिक प्रेमालाप इत्यादि अनुभाव हैं। स्तम्भ खेद रोमाञ्च वेपथु, स्वरभङ्ग वैवर्ण्य अश्रु पुलक ये आठ प्रकार के सात्विक भाव पूर्ववत् हैं। आलस्य और उग्रता से रहित निर्वेद, हर्ष, मान, अनुनय, इत्यादि सञ्चारिभावों से परिपुष्ट प्रियता रति स्थायी भाव वाला उज्ज्वल भक्तिरस कहा गया है। ''शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः'' कहकर अमरकोषकार ने शृङ्गार रस के तीन भेद किये है। इस का तारतम्य प्रतीत होता है- सामान्य लौकिक नायक नायिकाओं का प्रेम मिलन शृङ्गार शब्द से अभिहित किया गया है । देव गन्धर्व किन्नर अप्सराओं का प्रेम मिलन रूप शृङ्गार शुचि शृङ्गार की संज्ञा दी गई है। नित्य विभूति और लीला विभूति में महारास प्रभृति दिव्य भगवल्लीलाओं में जो शृङ्गार भाव है वह उज्ज्वल शृङ्गार के नाम से अभिहित है। उज्ज्वल नीलमणि, सिद्धान्त रत्नाञ्जलि आदि ग्रन्थों में उज्ज्वल शृङ्गार का प्रभूत विवेचन किया है। अन्य हास्य करुणादि रसों का इन्हीं पांच रसों में अन्तर्भाव किया है। अतः शान्तदास्यादि ये ही पांच रस प्रसिद्ध हैं। विस्तारभय से अन्तर्भाव की प्रक्रिया का विश्लेषण नहीं किया गया।

विरोधिन इति-एतदाप्तेः श्रीकृष्णप्राप्तेः विरोधिनः। प्रतिबंध-कस्यरूपं भक्तापराधत्वं नामापराधत्वं विषयासक्तत्वं उचितस्य परित्यागोऽनुचितस्य करणं विद्धैकादशीव्रतमित्यादि ।

भावार्थ-विरोधिनोरूपम्-पञ्चम अर्थ विरोधितत्व का स्वरूप बताते हैं ''एतदाप्तेः'' श्रीकृष्ण की प्राप्ति अर्थात् चरमफल भगवद्भावापत्तिरूपमोक्ष प्राप्ति के विरोधितत्त्व का स्वरूप भी मुमुक्षु साधक जनों को भली भाँति समझ लेना चाहिए। श्रेयः प्रतिबन्धक के सामान्य-विशेष भेद से ग्रन्थान्तरों में बहुविध स्वरूप बतलाये गये हें। यहाँ पर केवल पांच भेद दिखाये जा रहे है। जैसे भक्तापराधत्वम् नामापराधत्वम्, विषयासक्तत्वम्, उचितत्यागः अनुचिताचरणमित्यादि। भगवद् भक्तों पर ईर्ष्या द्वेषवश जो अपराध या उनकी अवज्ञा करता है वह श्रेयः मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है उसे दीर्घकाल तक विपत्ति का सामना करना पड़ सकता है। महर्षि दुर्वासा जैसे ज्ञानी महात्मा

को भी भगवान् कृष्ण के अनन्य भक्त महाराज अम्बरीष के प्रति ईर्ष्या द्वेषवश कृत्या द्वारा उनके अहित की चेष्टा करने से चक्रराज सुदर्शन का ताप सहन करना पड़ा। भक्तापराध करने वाले की ब्रह्मा विष्णु शिव आदि देवाधिदेव भी सहायता नहीं करते। उन्होंने दुर्वासा की सहायता नहीं की अन्ततः उन्हें राजा से ही क्षमा मांगनी पड़ी। इसी प्रकार कुवेर पुत्रों ने नारदजी की अवज्ञा की उन्हें दीर्घकाल तक वृक्षवन कर रहना पड़ा बाद में श्रीकृष्ण ने उनका उद्धार किया। अन्य साधारण व्यक्ति यदि निरपेक्ष भक्तों की अवज्ञा करता है तो उसे कैसे श्रेयः प्राप्त हो सकेगा। अतः साधक को सदा सावधान रहना चाहिए कि कहीं भक्तापराध न बन जाये।

अब नामापराध का उदाहरण देखिए-

हरिवंशपुराण में कथा आती है-घण्टाकर्ण नामक दैत्य ने मोक्ष प्राप्ति के लिए भगवान् शिव की आराधना की। परन्तु श्रीहरि के नारायण, राम, कृष्ण, जनार्दन, गोविन्द आदि नाम किसी के द्वारा उच्चारित होने पर कान से सुनाई न पड जाय एतदर्थ कान में घण्टा बांध रखा था, उसे हिलाता रहता। इस नामापराध के कारण भगवान् शिव ने दैत्य को घोर तपस्या करने पर भी मोक्ष का अधिकारी नहीं समझा। स्वयं उसे मोक्ष प्रदान न करके श्रीहरि की शरण में जाने की आज्ञा दी। दैत्य ने नामापराध की निवृत्ति और मोक्ष प्राप्ति के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की प्रभु कृपा से भवबन्धन से मुक्त हुआ । अतः उपासना क्रम में कहीं जान अनजान में नामापराध न बन जाय, साधक को इसका सदा ध्यान रखना चाहिए। इसी प्रकार ''राम नाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्र सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना'' ''राम त्वत्त्वोऽधिकं नाम इति मे निश्चितामतिः। त्वयैकातारिताऽयोद्ध्या नाम्ना च भुवनत्रयम्।'' ''साङ्केत्यं परिहास्यं वास्तोभं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः।'' ''नामनि यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः। तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः।'' ''हरिर्हरतिपापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।'' इत्यादि शास्त्र वचनों से भगवन्नाम की जो महिमा बताई गई है उनके विषय में अविश्वास करना, सामान्य मनुष्यों की व्यावहारिक संज्ञा के समान समझना, नाम संकीर्तन जपादि में अरुचि रखना इत्यादि भी नामापराध

के रूप में समझना चाहिए।

विषयासक्तत्वम् -

चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा रूपादि विषयों का ग्रहण विषयेन्द्रिय संयोग कहलाता है। इसमें इन्द्रियों का नायक मन प्रमुख रूप से संसक्त रहता है!। इसीलिए विषयों के प्रति आसक्ति मन की वृत्ति है। विषयासक्त मन जब तक विषयों से पृथक् नहीं होता और सत्संग द्वारा भगवदुन्मुख नहीं होता तब तक आत्मा का भवबन्धन नहीं छूटता। ''मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'' अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्धमोक्ष का कारण है। भगवान् श्रीकपिलदेवजी माता देवहूति से कहते हैं-''चेतः खल्वस्यबन्धाय मुक्तये चात्मनोमतम्। गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये।'' (भा० ३ स्क० अ० २५ श्लो० १५) हे मातः! इस जीवात्मा के निमित्त संसार बन्धन और मोक्ष का कारण इन्द्रियाध्यक्ष मन ही है। त्रिगुणात्मक विषयों में आसक्त होने पर मन भी त्रिगुणमय बन जाता है और बन्धन का कारण होता है। किन्तु जब परमात्मा में अनुरक्त हो जाता है तब वही मन निर्विषय होकर मोक्ष का हेतु बन जाता है। अतः साधकों को साधनावस्था में बुद्धि द्वारा इन्द्रियों सहित मन को उसी प्रकार निग्रह करना चाहिए जैसे कुशल सारथी उत्पथगामी अश्वों को नियन्त्रित करता है।

उचितत्याग-

प्रत्येक मनुष्य को आत्मकल्याण के लिए अपने अपने वर्णों आश्रमों के अनुरूप धर्माचरण एवं कर्म सम्पादन करना चाहिए। ब्राह्मण प्रमादवश स्ववर्णोचित सदाचार स्नान-सन्ध्या-जप-स्वाध्याय-देवपूजा तर्पणादि कृत्यों को त्यागकर भगवत्प्राप्ति के लिए अन्य साधन करता है तो उचित के त्यागरूप प्रतिबन्धक के कारण उसे भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र भी सदाचार सहित देश धर्म की रक्षा, नियमानुसार कृषि वाणिज्य पूर्वक धनार्जन, निष्कपट सेवाभाव का त्याग करेंगे तो उन्हें श्रेयः प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ एवं सन्यास आश्रमों के धर्म एवं नियमों का त्याग करना भक्ति साधना में प्रतिबन्धक है। शास्त्रों में विष्णुभक्त के स्वरूप का वर्णन कितने हृदयग्राही रूप में किया है-''न चलति निज वर्ण धर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे। न हरति न च हन्ति

किञ्चिदुच्चैः स्थितमानसं तमवेहि विष्णुभक्तम्।'' अर्थात् जो साधक अपने वर्ण एवं आश्रम धर्म से कभी विचलित नहीं होता, अपने पराये में जिसकी भेद बुद्धि नहीं है, समान बुद्धि है, न किसी की वस्तु का हरण करता, न किसी को मनसा, वाचा, कर्मणा कष्ट देता, जिसका मन सदा उच्च स्थिति में रहता है या उदारता से युक्त है उसको विष्णु भक्त कहते हैं। ऐसे ही विष्णुभक्त अपने आराध्य का चिन्तन कर भक्तिरस में निमग्न हो जाते हें।

अनुचिताचरणम्-

''साध्नोति हितम्'' इस व्युत्पत्ति से साधु शब्द निष्पन्न हुआ। निज पर का हित साधन करने वाला साधु होता है। ''परोपकाराय सतां विभूतयः'' कहकर नीतिकार ने भी सज्जन के स्वरूप एवं स्वभाव का निरूपण किया है। साधक अर्थात् साधु को ''शास्त्र निषिद्ध'' लोक विरुद्ध कर्म कभी नहीं करना चाहिए। विद्धा एकादशी का व्रत करना भी अनुचिताचरण है। अतः श्रेयः प्रतिबन्धक विरोधि रूप होने से अनुचिताचरण सदा त्याज्य है। इत्यादि।

प्रपन्नत्वादि जीवस्य स्वाभाविको धर्म इत्युक्तम्। प्रपत्तिः शरणागतिः सा च षोढा ''आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्ज-नम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो भर्तृत्वे वचनं तथा, आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिरिति कुमारोक्तेः।

भावार्थ - ''प्रपत्तिश्च हरेर्गुरोः'' अर्थात् हरि की प्रपत्ति, गुरु की प्रपत्ति। प्रकारान्तर से शरणागति और गुरूपसत्ति जीव का स्वाभाविक धर्म अर्थात् कर्तव्य है ऐसा पूर्व में बताया गया है। अब उसी प्रपत्ति अथवा शरणागति के भेदों का निरूपण करते हुये कहते हैं-वह शरणागति छः प्रकार की है जिसका विवेचन निम्न लिखितानुसार किया जारहा है--

(१) आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः--

सबकी आत्मा भगवान् पुरुषोत्तम श्रीहरि हैं ऐसा निश्चय करके ब्रह्मादि स्थावरान्त समस्त प्राणिमात्र में अनुकूलता का भाव रखना उनके प्रति अनुकूल आचरण करना शरणागति का प्रथम अङ्ग है। ''चराचराणि भूतानि सर्वाणिभगवद् वपुः। अतस्तदानुकूल्यं मे कर्तव्यमिति निश्चयः।'' इत्यादि शास्त्र वचन इसमें प्रमाण हैं।

(२) प्रातिकूल्यस्यवर्जनम्--

शरणागति का प्रातिकूल्यवर्जन नामक द्वितीय अङ्ग है, हिंसा-मात्सर्य, मिथ्यापवाद, कटुभाषण आदि अनुकूलाचरण के विपरीत जो प्राणी के प्रति प्रतिकूलाचरण हैं उनका सर्वथा परित्याग करना। इस सम्बन्ध में महर्षि और्व द्वारा चक्रवर्ती सम्राट् सगर के लिए उपदिष्ट ''परापवाद पैशून्यमनृतं यो न भाषते। अनुद्वेगकरं चापि तोष्यते तेन केशवः। परपत्नीपरद्रव्यपरहिंसासु यो मतिम्। न करोति सदा भूप तोष्यते तेन केशवः।'' इत्यादि वचन मननीय हैं।

(३) रक्षिष्यतीतिविश्वासः--

सौशील्य-वात्सल्य-शरण्यादि गुणों के सागर भक्तवत्सल भगवान् शरणापन्न हम लोगों की अवश्य रक्षा करेंगे इस प्रकार दृढ विश्वास शरणागति का तृतीय अङ्ग है। ''रक्षिष्यत्यनुकूलान्न इति या सुदृढा मतिः। स विश्वासो भवेच्छक्र सर्वदुष्कृतिनाशनः।'' ''योगक्षेमं वहाम्यहम्'' सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'' इत्यादि भगवत्प्रोक्त शास्त्रीय वचनों पर प्रपन्नजनों को सदा विश्वास रखना चाहिए।

(४) भर्तृत्वे वचनं तथा (गोप्तृत्ववरणं तथा इति पाठान्तरम्)--

सर्वज्ञ सर्वरक्षासमर्थ कारुण्यादि गुणाकर होने पर भी भगवान् श्रीहरि प्रार्थना पराङ्मुख अर्थात् हे प्रभो ! आप मेरे भर्ता बन जाओं मेरे गोप्ता (रक्षक) बन जाओ इस प्रकार की प्रार्थना के बिना भक्त की भी रक्षा नहीं करते । अन्यथा सब प्राणियों का मोक्ष हो जायेगा और शास्त्र मर्यादा भी टूट जायेगी। इस प्रकार निश्चय करके सदा प्रार्थना करते रहना भर्तृत्व वचन या गोतृत्व वरण नामक शरणागति का चतुर्थ अंग है। प्रार्थना स्वरूप बताते हैं- ''श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर। संसार सागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो। केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन। गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव।'' हे सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण आप रूक्मिणी के प्राणवल्लभ हैं, गोपियों के चितचोर हैं, हे श्यामसुन्दर ! हे जगद्गुरो संसार सागर में डूबे हुये मेरा आप उद्धार करो। हे केशव ! आप शरणागतजनों के समस्त क्लेशों का हरण करने वाले हैं, हे नारायण हे जनार्दन ! हे माधव ! आप वेदादि शास्त्रों (वाणी) द्वारा ही जानने और प्राप्त करने योग्य हो, आप परमानन्द स्वरूप

हो, हे प्रभो आप मेरा इस भव सागर से उद्धार कीजिए, मुझे उबारिये। इत्यादि शास्त्र वचन गोप्तृत्व वरण में प्रमाण हैं।

(५) आत्मनिक्षेपः--

शरण्य (शरणागतरक्षक) भगवान् के अनुग्रह का मुख्य कारण प्रपत्ति है ऐसा निश्चय करके अहंता ममता (मैं हूँ, मेरा है) इत्यादि स्वस्वामित्व भाव का त्याग और आत्मात्मीय पदार्थों की स्वामिता का भार श्रीहरि में समर्पण करना आत्म निक्षेप नामक शरणागति का पञ्चम अङ्ग है। ''आत्मात्मीयभरन्यासोह्यात्मनिक्षेप उच्यते'' ''आत्मा राज्यं धनं मित्रं कलत्रं वाहनानि च। एतद् भगवते सर्वमितितत्प्रोज्झितं सदा।'' ''राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि।'' इत्यादिं शास्त्र वचन इसमें प्रमाण है।

(६) कार्पण्यम्--

उपायों की असफलता, अपायों (विघ्नों) की स्वतः प्राप्ति स्वयं में स्वतन्त्रकर्तृत्व आदि अभिनिवेशरूप गर्व की हानि-इत्यादि कार्पण्य रूप शरणागति का षष्ठ अङ्ग है। शास्त्र वचन-''उपाया नैव सिद्ध्यन्तीत्यपाया विविधास्तथा। इति या गर्वहानिस्तद्दैन्यं कार्पण्यमुच्यते।'' ''कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥'' इत्यादि प्रमाण रूप में अनुसन्धेय है।

इन छः प्रकार की शरणागति में आत्मनिक्षेप अङ्गी अन्य सब अङ्ग है इत्यादि महर्षि सनकादिकों ने बताया है।

भवतापप्रहर्त्तारं वांछितार्थप्रवर्षिणम्। आश्रयं सुविहंगानां निम्बार्कप्रभुमाश्रये।'' इति श्रीनन्ददास विरचिता तत्त्वसारप्रकाशिनी दशश्लोकीटीका समाप्ता।

भावार्थ - जीवों के जन्म जरा मरण रूप तापों को हरण करने वाले, अभिलषित वस्तु को देने वाले, सज्जनों के आश्रय स्वरूप, सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य जो सर्वसमर्थ हैं, मैं उनका ही आश्रय ग्रहण करता हूँ। मङ्गलादीनि मङ्गलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते इत्यादि वचनानुसार शास्त्रान्त मङ्गलाचरण रूप आचार्यस्तवन के साथ यह श्रीनन्ददासजी द्वारा विरचित दशश्लोकी की तत्वसार प्रकाशिनी नामक टीका पूर्ण हुई । ॐ शान्तिः ।

श्रीसुदर्शनचक्रावतार जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य विरचितम्--

श्रीराधाष्टक - स्तोत्रम्

(अनुवादक :- वासुदेवशरण उपाध्याय)

नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै, नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै ।
सदानन्दरूपे प्रसीद त्वमन्तःप्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्धम् ।।१

हे नित्य आह्लादस्वरूपिणि ! श्रीराधिके लक्ष्मी का भी जिनमें ही अन्तर्भाव है, अतः आप ही लक्ष्मी हो । आपको नमस्कार है । आपही श्रीकृष्ण की पराशक्ति स्वरूपा राधिका हो, आपको नमस्कार है । आपही आनन्दकन्द मुकुन्द की नित्य सहचारणी प्रियतमा हो, आपको नमस्कार है। हे सदानन्द विग्रहधारिणी ! प्राणेश्वरी श्रीराधिके ! आप मेरे अन्तः करण रूप मानस मन्दिर के प्रोज्ज्वल प्राङ्गण में रसिकेश्वर श्रीश्यामसुन्दर के साथ अत्यन्त शोभा को धारण करती हुई त्वत्पदाम्बुज प्रपन्न मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ।।१।।

स्ववासोपहारं यशोदासुतं वा, स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम् ।
स्वदाम्नोदरे या बबन्धाशु नीव्या, प्रपद्ये नु दामोदरप्रेयसीं ताम् ।।२

जो अति रसमयी निकुञ्जलीला के विविध प्रसङ्गों पर निज प्रिया के वसन हरण करने वाले तथा इसी प्रकार ललितकेलिविलास हेतु उन्हीं श्रीसर्वेश्वरी से दुग्ध-दधि नवनीत (दूध, दही, मक्खन) को छलपूर्वक प्राप्त करने वाले आनन्दसिन्धु निजप्राणप्रिय यशोदानन्दन श्रीकृष्ण की प्रेमार्द्र चित्त से स्वयं आराधना करती हुई श्रीकृष्ण रूप राधा, राधा रूप श्रीकृष्ण दोनों युगल स्वरूप का अन्योन्याराधन ही रसिकजनों को प्रेमातिशय सम्यक् दर्शन कराता है । जिन्होंने केलि-क्रीड़ा के समय अपने नीवी रूप बन्धन से प्रेमातुर हो शीघ्र ही श्रीनन्द-नन्दन के उदर को बांध लिया था, जिसके कारण उनका नाम दामोदर पड़ा । उन दामोदर की परमप्रिया श्रीवृषभानुनन्दिनी की मैं सदैव निश्चित रूप से शरण लेता हूँ ।।२।।

दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वशे तं महाप्रेमपूरेण राधाभिधाऽभूः ।
स्वयं नामकीर्त्या हरौ प्रेम यच्छ प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम्।।३

हे निकुञ्ज-विहारिणि ! जिनकी आराधना ब्रह्मादि देवता और बड़े-बड़े योगियों के लिए भी दुःसाध्य है । उन वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण को अपने अन्तःकरण में धारण कर आपने अगाध प्रेम-प्रवाह से उन्हें अपने अधीन किया है । इसी प्रेमाधिक्य से धारण के कारण आप राधा नाम से सर्वत्र विख्यात हुई । हे श्रीकृष्ण स्वरूपे ! अपने इस नाम की कीर्ति से अपने सम्मुख उपस्थित मुझ शरणागत के लिये परम दयालु श्रीगोविन्द पदाम्बुजों में अखण्ड प्रेम प्रदान करो, अर्थात् श्रीयुगल प्रभु के चरणारविन्द में मेरी सदा ही भक्ति बनी रहे ॥३॥

मुकुन्दस्त्वया प्रेमडोरेण बद्धः पतङ्गो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः ।
उपक्रीडयन् हार्दमेवानुगच्छन् कृपा वर्तते कारयातो मयीष्टिम्।।४

हे श्रीराधे ! आपने अपने प्राणधन श्रीकृष्ण को अपने सुदृढ प्रेमसूत्र में बांध लिया है । इसीलिए आपके समीप, पार्श्व में ही वे सदा भ्रमण करते हैं और आस-पास में ही नानाविध क्रीड़ा करते हैं । जिस प्रकार लघुवयस्क बालक सूत में बांधे हुये पतङ्ग को चाहे जिधर घुमाता है, और उसी प्रकार आप भी श्रीकृष्ण को चाहो जिधर विहार कराती हैं । आपके हृदय को वे ही यथार्थ रूप से जानते हैं और सदानुकूल रहते हैं । आपकी अहैतुकी अनुकम्पा समस्त प्राणियों पर रहती है । अतः हे प्राणेश्वरी ! आप मेरे द्वारा अपनी आराधना अर्थात् सेवा करवाओ ॥४॥

व्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं मुकुन्देन साकं विधायाङ्कमालम्।
समामोक्ष्यमाणानुकम्पाकटाक्षैः श्रियं चिन्तये सच्चिदानन्दरूपाम्।।५

जो अहर्निश निश्चित समय पर कुञ्जविहारी श्यामसुन्दर प्रभु के साथ उन्हें अङ्कमालकर निज लीलाभूमि श्रीधामवृन्दावन में विहार करती हुई तथा निज शरणापन्न भक्तों पर प्रेरित कृपाकटाक्षों से शोभायमान उन पराभक्ति प्रदायिनी महाप्रेममयी सच्चिदानन्द स्वरूपा श्रीरासेश्वरी वृषभानुनन्दिनी का मैं सदा ही चिन्तन ध्यान करता हूँ ॥५॥

मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्चिताङ्गैरहं व्याप्यमानां तनुस्वेदविन्दुम् ।
महाहार्द्दवृष्ट्या कृपापाङ्गदृष्ट्या समालोकयन्तीं कदा त्वां विचक्षे।।६

हे श्रीकिशोरी ! आनन्द महोदधि मदनमोहन श्रीकृष्ण के प्रगाढ अनुराग के द्वारा जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुलकित हो रहे हैं । अतः उन पुलकित अङ्गों से व्याप्त और जिनके प्रत्येक अङ्ग लघु-लघु स्वेद-कणिकाओं से सुशोभित हैं, ऐसी परम करुणामयी सदा कृपाकटाक्ष से परिपूर्ण दृष्टि द्वारा महान् प्रेम की वर्षा कर सहज वात्सल्य से मेरी ओर सदा अवलोकन करती हुई श्रीराधे ! मैं आपका दर्शन कब कर पाऊँगा ? ।।६।।

यदंकावलोके महालालसौघं, मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः ।
पदं राधिके ते सदा दर्शयान्तर्हृदिस्थं नमन्तं किरद्रोचिषं माम्।।७

हे श्रीराधिके यद्यपि जिन नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का समस्त ऋषि-मुनि इन्द्रादि देवता सदा ध्यान किया करते हैं । इसीलिये स्वयं ही ध्येयपाद हैं । तथापि वे रासविहारी श्यामसुन्दर स्वयं जिनके चरण चिह्नों को अवलोकन करने में महती लालसा रखते हैं । ऐसी अचिन्त्य महिमाशालिनी आपके दिव्य पादपद्मों का मैं नित्य ध्यान करता हूँ । अतः इधर मेरे अन्तर्हृदय में अपूर्व ज्योतिः पुञ्ज को विखेरते हुये अपने श्रीकृष्ण वन्दित चरण का प्रणतशील मुझे दर्शन कराओ ।।७।।

सदा राधिका नाम जिह्वाग्रतः स्यात्, सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्ताम्।
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तः स्वभावे, गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे।।८

दीर्घकाल से श्रीराधानामसुधा रस पिपासु मेरी जिह्वा के अग्रभाग पर सदा ही वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका के कल्याणकारी नाम विराजमान रहें, मेरे नेत्र जिनके दिव्यातिदिव्य अनिर्वचनीय दर्शनों के लिए परम उत्कण्ठित हैं उनके समक्ष अब श्रीराधिका का ही अनुपम रूप प्रकाशित हो तथा मेरे कर्णपुटों (कानों) में अब श्रीराधिका की कीर्ति कथा ही गूँजती रहे, मेरा मन जो सतत उन्हीं के पादपद्मों में अभिरत है, उस अन्तर्हृदय में अब अखिल शोभा सम्पन्न आह्लादिनी शक्ति श्रीराधिका के असंख्य गुणगण विराजित रहें ऐसी मेरी अभिलाषा है ।।८।।

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य ।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि सखीमूर्त्तयो युग्मसेवानुकूलाः।।६

वृन्दावनविहारी दामोदर की परमप्रिया श्रीवृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधिका की स्तुति से सम्बन्धित इन आठश्लोकों का जो भक्तजन प्रेमपूर्वक पाठ करते हैं वे श्रीकृष्णधाम वृन्दावन में श्रीराधामाधव सेवा के अनुकूल सखी स्वरूप प्राप्त कर सदा परमानन्द में निमग्न रहकर सुख से निवास करते हैं ।।६ ।।

अनुवादक	:	श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय (निम्बार्कभूषणः) व्या. सा. वेदान्ताचार्यः
जन्म स्थान	:	गण्डकी अंचल स्याङ्जा मण्डलान्तर्गत किचानासदह (नेपाल)
जन्म तिथि	:	भाद्रपद मास (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी) वि.स. 1997 दिनांक 18-08-1940
प्राचार्य	:	श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालयस्य अ. भा. श्रीनिम्बार्कायार्यपीठ- निम्बार्कतीर्थ-सलेमाबादः पुष्करक्षेत्रे, अजमेरमण्डलम् (राजस्थानम्)